अक्टूबर –2022

अखण्ड ज्योति

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

वर्ष–86 । अंक–10। ₹–19 प्रति । ₹–220 वार्षिक
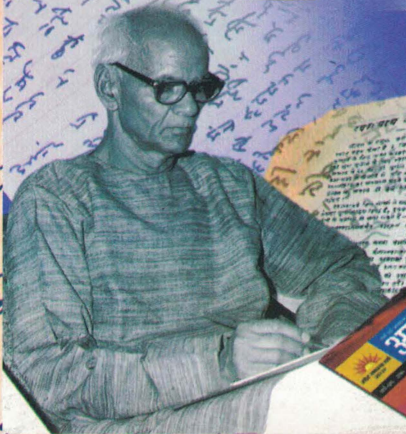
सुखी और समृद्ध बनने का मार्ग परिश्रम है।

"सुखी और समृद्ध बनाने वाले साधन-रत्न हर दिशा में पर्याप्त संख्या में मौजूद हैं। मनुष्य-का-मनुष्य से सहयोग होने पर एक-से-एक बढ़िया आनंददायक अवसर उपलब्ध होते हैं, मित्रता, प्रेम, प्रतिष्ठा, आदर, सेवा, सहायता, दान, उदारता, मधुरता आदि के द्वारा आपसी सहयोग होने पर सामाजिक जीवन में ऐसे- ऐसे आनंदमय अवसर उपस्थित होते हैं, जिन्हें रत्न से किसी प्रकार कम नहीं कहा जा सकता। विद्या की दिशा में लीजिए अध्ययन, ज्ञान, विशेषज्ञता के कारण मनुष्य जितना सूक्ष्म एवं समर्थ हो जाता है यह महत्ता भी जवाहरात के थैले की महत्ता से कम नहीं है। उत्तम स्वास्थ्य का, निरोगता का प्राप्त होना एक बेशकीमती हीरा है। आर्थिक स्थिति का अच्छा होना, अच्छा व्यवसाय मिल जाना, एक ऋद्धि समझी जाती है। सद्‌गुण, मीठा स्वभाव, भले विचार, सुंदर चरित्र बहुमूल्य हीरक हारों की भाँति विभूषित करने वाले आभूषण हैं। आत्मिक आनंद, प्रसन्नता, संतोष, निराकुलता एवं जीवनमुक्ति, सृष्टि की सर्वोच्च संपदा हैं। इस प्रकार विभिन्न दिशाओं में विभिन्न प्रकार के अनमोल जवाहर पग-पग पर बिखरे पड़े हैं। इनमें से अपनी योग्यता की प्रामाणिकता के आधार पर हर मनुष्य मनचाही मात्रा में प्राप्त कर सकता है। यह योग्यता की प्रामाणिकता जिसकी वजह से जीवन को आनंदमय बनाने के साधन प्राप्त होते हैं—केवल परिश्रमशीलता ही है।"

— पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य
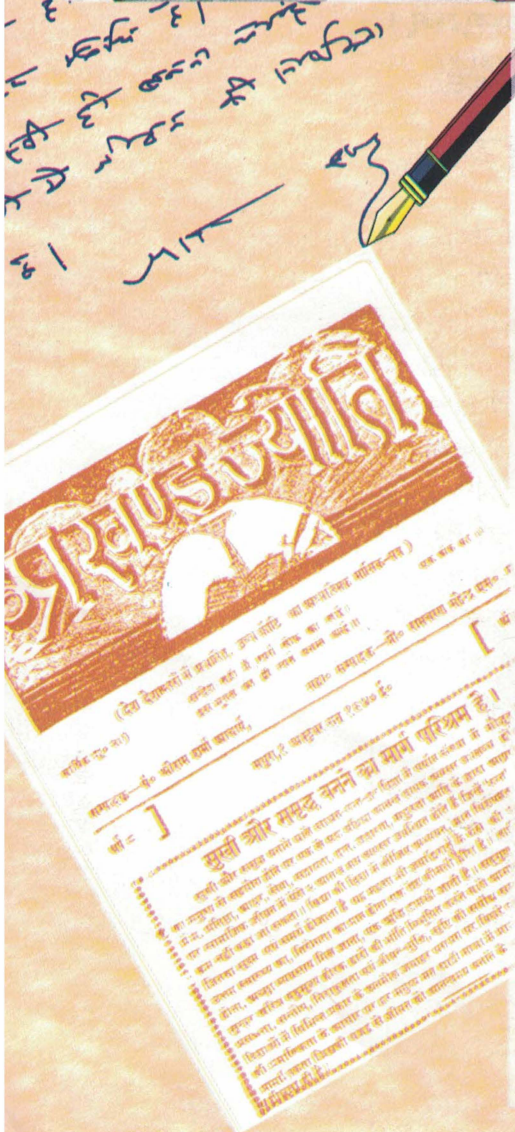
संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2402574
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
प्रातः 10 से सायं 6 तक

वर्ष	:	86
अंक	:	10
अक्टूबर	:	2022
आश्विन-कार्तिक	:	2079
प्रकाशन तिथि	:	01.09.2022

वार्षिक चंदा

भारत में	:	220/-
विदेश में	:	1600/-
आजीवन (बीसवर्षीय)		
भारत में	:	5000/-

उपासना

हमारे नित्यकर्मों में उपासना की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। सामान्य रूप से हमारे नित्यक्रम में दो प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं: ग्रहण एवं विसर्जन। मनुष्य अन्न, जल, वायु आदि ग्रहण करता है और मल-मूत्र, पसीना इत्यादि विसर्जित करता है। इन्हें शारीरिक रूप से नित्यक्रम का अंग माना जा सकता है। आत्मा की भी आवश्यकताएँ कुछ-कुछ ऐसी ही हैं। जैसे शारीरिक नित्यक्रम की आवश्यकताएँ पूर्ण न हो पाने पर शारीरिक स्वास्थ्य प्रभावित होता है—वैसे ही आत्मिक आवश्यकताएँ पूर्ण न होने पर मानसिक रुग्णता और आत्मिक मलिनता का सामना व्यक्ति को करना पड़ता है।

चेतना की आवश्यकता चेतना ही पूर्ण कर पाती है। ईश्वरीय सत्ता के साथ मानवीय चेतना की घनिष्ठता को बनाए रखने का कार्य और उसके साथ आवश्यक आदान-प्रदान करने का कार्य उपासना के माध्यम से ही संभव हो पाता है। उपासना न करने पर ईश्वर का तो कुछ लाभ-नुकसान नहीं होता, पर मनुष्य जरूर उस लाभ को पाने से वंचित रह जाता है, जिससे उसको आत्मिक पोषण मिल पाता। पानी न पीने से वरुण देवता को कोई नुकसान नहीं होता, पर व्यक्ति जरूर प्यासा रह जाता है।

उपासना का अर्थ ही सामीप्य से है। उसका उद्देश्य नित्य-नियमित के कर्मों का परिपाक करना है। ईश्वर की समीपता प्राप्त करने के लिए की गई उपासना यदि सच्चे मन से और सही उद्देश्य से की गई है तो उसका प्रभाव पारस के स्पर्श से स्वर्ण के बनने के रूप में निकलकर आता है। इसीलिए हर साधक के लिए नित्यप्रति की उपासना एक अनिवार्य क्रम मानी जाती है। ❑

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

विषय सूची

आवरण पृष्ठ परिचय

ज्योति पर्व पर प्रखर प्रज्ञा एवं सजल श्रद्धा के समक्ष जलते दीप

अक्टूबर-नवंबर, 2022 के पर्व-त्योहार

वार	तिथि	पर्व
शनिवार	01 अक्टूबर	सूर्य षष्ठी
रविवार	02 अक्टूबर	महात्मा गांधी/शास्त्री जयंती
बुधवार	05 अक्टूबर	विजयादशमी
गुरुवार	06 अक्टूबर	पापांकुशा एकादशी
रविवार	09 अक्टूबर	शरद पूर्णिमा/वाल्मीकि जयंती
गुरुवार	13 अक्टूबर	करवा चौथ
सोमवार	17 अक्टूबर	अहोई अष्टमी
शुक्रवार	21 अक्टूबर	रमा एकादशी
शनिवार	22 अक्टूबर	धनतेरस/धन्वंतरि जयंती
सोमवार	24 अक्टूबर	रूपचतुर्दशी/दीपावली
बुधवार	26 अक्टूबर	बेसतुबरस/अन्नकूट
गुरुवार	27 अक्टूबर	भाईदूज/यम द्वितीया
रविवार	30 अक्टूबर	सूर्य षष्ठी
बुधवार	02 नवंबर	अक्षय नवमी
शुक्रवार	04 नवंबर	देव प्रबोधिनी एकादशी/देवठान
मंगलवार	08 नवंबर	गुरुनानक जयंती/पूर्णिमा व्रत/ देव दीपावली
सोमवार	14 नवंबर	बाल दिवस
रविवार	20 नवंबर	उत्पत्ति एकादशी
मंगलवार	29 नवंबर	सूर्य षष्ठी

यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। —*संपादक*

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

संतुलन ही विकास का आधार

श्रीमद्भगवद्गीता के चौदहवें अध्याय में श्रीभगवान के मुख से एक बड़ा महत्त्वपूर्ण सूत्र निकला है, उसके विषय में चिंतन आज की परिस्थितियों में आवश्यक हो जाता है। वो अध्याय प्रारंभ होता है तो भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि मैं तुझे वो ज्ञान प्रदान करता हूँ, जिस ज्ञान को प्राप्त करने के बाद या जिसे जान लेने के बाद सभी मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त हो जाते हैं। क्या है वो ज्ञान? इस प्रश्न के उत्तर में वे कहते हैं कि—

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तय: सम्भवन्ति या:।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रद: पिता॥ 4॥

अर्थात यहाँ श्रीभगवान कहते हैं कि नाना प्रकार की योनियों में; क्योंकि योनि अकेले मनुष्य की तो है नहीं, असंख्यों हैं—मनुष्येतर प्राणी भी हैं, देव, यक्ष, गंधर्व, किन्नर इत्यादि भी हैं तो भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि जितने भी प्राणी हैं, वे अलग-अलग दिखते जरूर हैं, पर उन सबको गर्भ में धारण करने वाली माँ एक ही हैं और वो हैं जगन्माता, जगज्जननी और उन सबके भीतर चेतनता का बीज डालने वाले पिता भी एक ही हैं अर्थात परमेश्वर। जगन्माता, जगज्जननी हैं और परमेश्वर परमपिता हैं और जड़ व चेतन का यह जो संयोग है, यह प्रकृति के तीन गुणों से चलता है—सत्, रज और तम।

गीता के अनुसार बल्कि सांख्य दर्शन के अनुसार, यह सारी-की-सारी सृष्टि जितनी दिखाई पड़ती है और जितनी नहीं दिखती—यह सत्, रज और तम के परस्पर मेल के कारण है। गीता कहती है कि यह संसार प्रकृति के इन तीन गुणों के मध्य के खेल के कारण है। यह भी एक अद्भुत बात है; क्योंकि जिसने भी सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में शोध किया है—उसकी गिनती तीन पर आकर के ही रुक जाती है। वैदिक चिंतन के अनुसार सृष्टि की व्यवस्था त्रिमूर्ति देखते हैं अर्थात भगवान ब्रह्मा का कार्य निर्माण का, रचयिता का, भगवान विष्णु का कार्य पालन- पोषण, अभिवर्द्धन का और भगवान शिव का कार्य संहार-विनाश का है।

ईसाई धर्म भी कुछ ऐसा ही चिंतन लेते हुए हॉली ट्रिनिटी की बात करता है। आयुर्वेद में त्रिदोष का चिंतन आता है तो तप, तंत्र, योग की भाषा में इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना नाड़ियाँ कुछ ऐसे ही समीकरणों को जन्म देती दिखाई पड़ती हैं।

रोचक बात तो यह है कि विज्ञान की गिनती भी अंतत: तीन पर ही आकर रुक जाती है और वैज्ञानिक चिंतन भी इस जगत् के सारे व्यापार का आधार—प्रोटॉन, इलेक्ट्रॉन और न्यूट्रॉन को मानता है। वो यही कहता है कि सारे पदार्थों का निर्माण इन्हीं तीन मूलभूत तत्त्वों से हुआ है।

गीता इसी को सत्, रज और तम के मध्य का संवाद कहती है। वह कहती है कि प्रकृति अपने इन तीन गुणों के माध्यम से पुरुष को, जीवात्मा को संदेश भेजती है और पुरुष अपनी प्रवृत्ति के अनुसार इनका उत्तर देता है। वो उत्तर जो दिया गया वो दर्शन की भाषा में कर्म कहलाता है और किया गया कर्म संस्कार का, चित्त का, चित्त-जीवन का निर्माण करता है और यह जगत् रूपी क्रियाकलाप चलता रहता है।

जो यह खेल समझ गया, वो तीनों गुणों से पार जाकर त्रिगुणातीत हो जाता है और इसे न समझ पाने वाला व्यक्ति बँधा रहता है और तब तक जन्म लेता रहता है, जब तक वो गुणों के पार न चला जाए। इस तरह से भारतीय दर्शन के अनुसार यह संसार इन्हीं तीन गुणों के मध्य समीकरण का परिणाम है।

इनमें से तम—आलस्य की, जड़ता की, निष्क्रियता की, अवरोध की, ठहराव की दशा है। जैसे एक पत्थर पड़ा है—वो ठहरा हुआ है, पर यदि उसे पहाड़ी की चोटी से लुढ़का दें तो उसमें गति आ जाती है। यह जो गति की, त्वरा की, प्रवाह की अवस्था है—यह रज के कारण है। इसीलिए छोटे बच्चों में रज का आधिपत्य उनको निरंतर गतिशील रखता है, परंतु वृद्धावस्था में आया तम का आधिपत्य उसी व्यक्ति को ठहरा देता है, थका देता है। एक तरफ जन्म है, तो दूसरी ओर मृत्यु।

एक तरफ ऊर्जा का अतिशय प्रवाह है, तो दूसरी ओर निष्क्रियता। एक तरफ अनेकों विचार हैं, तो दूसरी ओर शून्यता। ये जो व्यक्तित्व के अतिरेक हैं—इनको सही दिशा देने के लिए, तीसरे गुण की ज़रूरत है वो है—सत् और वो सत् ही संतुलन लाता है।

सत् का अर्थ है—प्रकाश, पवित्रता, समग्रता और संतुलन। जीवन पूरी तरह से रज की ओर चला जाए तो महत्त्वाकांक्षी, उन्मादी, अहंकारी हो जाता है और यदि पूर्णरूपेण तम की ओर को बह जाए तो वो निष्क्रिय, बोझिल, पीड़ादायी हो जाता है। जीवन को उद्देश्यपूर्ण बनाने के लिए उसमें संतुलन जरूरी है—एक ऐसा संतुलन जिसमें ऊर्जा हो; प्रवाह हो; पवित्रता हो, पर समझदारी भी हो। साहस हो; शौर्य हो; पराक्रम हो, पर संवेदना भी हो। गति हो; क्षमता हो; विकास हो, पर विवेक भी हो।

आज भारतीय समाज को सही दिशा देने के लिए इसी संतुलन भरी सोच की आवश्यकता है, जहाँ ऐसी नीतियाँ बनाई जा सकें; जिनमें परंपराओं एवं विवेक के मध्य संतुलन हो, अतीत व भविष्य के मध्य संतुलन हो तथा आर्थिक विकास एवं संस्कृति के मध्य संतुलन हो। यदि ऐसा संतुलन आज हम स्थापित कर सकें तो भारतीय समाज ऐसी ऊँचाइयों को प्राप्त कर सकेगा, जिन्हें अभूतपूर्व कहा जा सके। ❑

एक बार एक राज्य में दुर्भिक्ष पड़ गया। ऋषि लोगों से बोले—''नरमेध यज्ञ से ही दुर्भिक्ष मिटेगा। इसके लिए एक व्यक्ति की बलि देनी होगी।'' यह सुनते ही चारों ओर श्मशान-सी नीरवता छा गई। सबको शांत देख महात्मा बोले—''क्या आप सबमें किसी में इतना साहस नहीं, जो स्वयं का बलिदान देकर पूरे राज्य का दुर्भिक्ष मिटा सके।'' तभी शतमन्यु नामक एक बालक आगे आकर बोला—''महर्षि मैं अपना बलिदान करने हेतु सहर्ष प्रस्तुत हूँ। मैं अपने माता-पिता की आज्ञा लेकर आता हूँ।''

यह बालक अपने माता-पिता की इकलौती संतान था। उसने घर पहुँचकर अपने माता-पिता को अपने निर्णय की जानकारी दी। उसके तर्कों के समक्ष उसके माता-पिता न नहीं कह सके। बालक यज्ञस्थली पर लौट आया। बलि के समय बालक निर्भीक भाव से सिंह-शावक के समान खड़ा हो गया। ज्यों ही पुरोहित ने खड्ग हाथ में लिया कि बादल छा गए, चारों ओर पुष्पवर्षा होने लगी। इंद्रदेव ने वहाँ प्रकट होकर उस बालक के गले में माला डालते हुए कहा—''मैं इस बालक की त्यागवृत्ति से प्रसन्न हूँ। अब यहाँ मेघ बरसेंगे। आलस्य, असंयम, अनैतिकता में डूबे यहाँ के सभी लोगों को दंडित करने के लिए ऐसा किया गया था।'' वहाँ खूब मेघ बरसे और दुर्भिक्ष मिट गया। यह सत्य है कि अकर्मण्यता, असंयम, अनैतिकता दैवी आपदाओं को आमंत्रण देते हैं।

भय से मुक्ति का राजमार्ग

भय मानवीय अस्तित्व से जुड़ा एक ऐसा पहलू है, जो किसी व्यक्ति या समुदाय तक सीमित नहीं है। यह कोई आज का नहीं, बल्कि एक शाश्वत सत्य है। आज पूरा विश्व किसी-न-किसी प्रकार के भय से आक्रांत है। हर व्यक्ति किसी एक या दूसरे भय पर काबू पाने के लिए संघर्ष कर रहा है, उससे बाहर निकलना चाहता है। एक निर्भय और निर्द्वंद्व जीवन जीना चाहता है, लेकिन निकल नहीं पाता।

प्रश्न उठता है कि इन सभी भयों का मूल कारण क्या है? वैदिक ऋषियों ने इस प्रश्न का समाधान युगों पूर्व कर दिया था। जब तक व्यक्ति स्वयं को शरीर और मन के साथ जोड़कर देखता है, तब तक वह भय से पूर्णतया मुक्त नहीं हो सकता। जब तक जीवन में अज्ञानता-अंधविश्वास, राग-द्वेष, स्वार्थ-अहंकार, अकर्मण्यता, अनैतिकता जैसे दोष-दुर्गुण रहेंगे, देहबोध का भाव प्रबल रहेगा, तब तक भय का अस्तित्व बना रहेगा, लेकिन भय के साथ आक्रांत जीवन वास्तव में एक अभिशप्त जीवन होता है, जिससे जितनी शीघ्र हो सके बाहर निकलना उचित रहता है; क्योंकि भय के आगे ही वास्तविक जीवन प्रारंभ होता है, एक गरिमामयपूर्ण अस्तित्व संभव हो पाता है।

स्वामी विवेकानंद के शब्दों में भय एक कमजोरी, दुर्बलता है तथा कायरता से बड़ा कोई पाप नहीं है। भय सबसे बड़ा अंधविश्वास है। भय ही मृत्यु है, नरक है, अधर्म है। जिस क्षण आप भयभीत होते हैं, उस क्षण आप कुछ नहीं होते तथा संसार में जितने भी नकारात्मक विचार और कर्म हैं, उनके मूल में भय का भाव ही सक्रिय रहता है। साथ ही हम जितने क्षुद्र और स्वार्थी होते हैं, उतना ही हमारा भय बढ़ा-चढ़ा होता है।

इसलिए कहा गया है कि दूसरों के प्रति तनिक-सा भी सत्कार्य अंतस् की शक्ति का जागरण करता है, दूसरों के प्रति थोड़ा-सा भी सद्भाव क्रमशः हृदय में सिंह के साहस का संचार करता है और साहसिक मनुष्य ही महान कार्य कर पाते हैं, कायर नहीं।

मात्र साहसियों के लिए ही मुक्ति संभव है, कायरों के लिए नहीं। सबसे ज्यादा साहसी ही मुक्ति के अधिकारी बनते हैं और साहस भी दो तरह के होते हैं। एक है शारीरिक सीमाओं से परे जाकर प्रकट करने वाला शारीरिक साहस, जो प्रायः क्षणिक होता है। दूसरा है आध्यात्मिक धारणा का साहस, जिसका सतत निर्वहन करना होता है।

आध्यात्मिक साहस के बल पर ही यह बोध होता है कि आप अनंत, अनश्वर, जन्म-मरण रहित आत्मा हो, जो आपको निर्भय बनाता है। ऐसे में अस्तित्व का सारा रहस्य निर्भयता में है, जहाँ कोई भय न हो। इस तरह भयग्रस्त मानव के लिए पहला धर्म—निर्भयता के भाव का उपदेश व प्रचार होना चाहिए।

भय मूलतः शारीरिक एवं मानसिक दुर्बलता, अज्ञानता—अंधविश्वास, अकर्मण्यता—अशक्ति, अनैतिक आचरण व नकारात्मक चिंतन आदि से जुड़ा तत्त्व है। दैनिक जीवन में छोटे-छोटे कदम के साथ इनका उपचार करते हुए भय से बहुत सीमा तक मुक्त हुआ जा सकता है।

इसके लिए सर्वप्रथम स्वस्थ व बलिष्ठ शरीर का अर्जन करें, क्योंकि इसी में सशक्त मन निवास करता है। इसके साथ मन-बुद्धि को विवेकशील, दूरदर्शी एवं प्रबुद्ध बनाएँ। इस तरह तन-मन से बलिष्ठ व्यक्ति ही निर्भय जीवन के अधिकारी बनते हैं। सत्संग अर्थात अच्छे लोगों का संग-साथ करें। नैतिक आचरण, कर्त्तव्यनिष्ठा एवं अनुशासित जीवन जिएँ। ये मिलकर आंतरिक रूप से नैतिक बल, आत्मबल के रूप में व्यक्ति को निर्भयता का वरदान दे जाते हैं।

यदि जीवन में कुछ अनपेक्षित हो भी जाए, तो इसे बहुत गंभीरता से न लें। इससे आवश्यक सबक लें तथा आगे बढ़ें। सत्यपथ का किसी भी हालत में त्याग न करें। प्रार्थना के बल को समझें, जहाँ कमजोर पड़ते हों, वहाँ इसका सहारा लें व अपने जीवन को प्रार्थनामय बनाएँ।

इस संदर्भ में व्यक्तित्व का अंग बन चुकीं बुरी आदतों से हर हालात में बचें, जो व्यक्ति को दुर्बल बनाती हैं, भय

की ओर ढकेलती हैं। आलस्य-प्रमाद-अकर्मण्यता की स्थिति से बाहर निकलें। कभी खाली न बैठें। जीवन को कर्त्तव्य कर्म, श्रमशीलता एवं कर्मठता से जोड़ें। फालतू की गपशप से बचें।

अपनी कमजोरियों, दुर्बलताओं व छोटी-छोटी गलतियों पर बड़बड़ाना, कुढ़ना व घुटना बंद करें। अपनी गलतियों से आवश्यक सबक लेते हुए सत्पथ पर आगे बढ़ें। दूसरों की सहानुभूति पाने की कुचेष्टा न करें। अपनी दुर्बलताओं व दु:ख को स्वयं तक रखें। अपने कर्त्तव्यपालन में किसी तरह का प्रमाद न करें, टालमटोल व दीर्घसूत्रता की प्रवृत्ति से बचें।

कर्त्तव्यपालन को आध्यात्मिक जीवनशैली का हिस्सा मानें। अपने जीवनलक्ष्य की ओर सतत बढ़ते रहें तथा एक अनिश्चित मन:स्थिति में डाँवाडोल न होते रहें। साथ ही दूसरों के साथ अपनी तुलना न करें, अपने मौलिक जीवन-पथ पर बढ़ते हुए अपने लक्ष्य का संधान करें। इसके साथ देखेंगे, तो पाएँगे कि जो आपको भयभीत करता है, पीछे हटाता है, वह सिर्फ और सिर्फ अज्ञान और भ्रम होता है।

इसी कारण व्यक्ति जीवन के राजमार्ग के बजाय शॉर्टकट का सहारा लेता है, अनैतिक जीवन को अपनाता है। इस तरह जो गलत तरीके से जीविका या नाम-यश का अर्जन करते हैं, भय उनका पीछा नहीं छोड़ता। अत: यदि निर्भय जीवन की इच्छा रखते हों तो हर तरह के गलत तरीकों से बचें।

इसके साथ उठें, जागें, सत्य में विश्वास करें तथा इसके अभ्यास का साहस करें, जो सत्य को जानने के लिए मृत्यु का भी सामना करने का माद्दा रखती हो। जो मनुष्य को यह जानने में मदद करती हो कि वह आत्मा है, पूरे ब्रह्मांड में कोई उसे नष्ट नहीं कर सकता। अत: अपने सत्य पर चट्टान की तरह खड़े हो जाएँ।

उपनिषद् के उस शब्द निर्भयता का अभ्यास करें, जो अज्ञानता व भय से ग्रसित मानवता के हृदयाकाश में निर्भयता का वरदान बनकर बरसती है। इसके साथ सत्य तथा आध्यात्मिक जीवन के साथ कोई समझौता न करें। अपने सत्य को स्वीकार करने का साहस करें। लाश के ढेर को फूल से ढकने की कुचेष्टा बंद करें तथा अपनी दुर्बलता को छिपाने के बजाय इसका सामना करें, इसका परिमार्जन करें।

इसके लिए पूर्णतया नैतिक बनें। साहसिक बनें। दिलदार व्यक्ति बनें। एकदम नैतिक, जो स्वप्न में भी, कल्पना में भी कोई पापकर्म की नहीं सोचता हो। सत्य व आत्मा की संपदा के हित में दुस्साहसी बनें। कायर ही पाप में लिप्त होते हैं, वीर नहीं, यहाँ तक कि मन से भी नहीं। ऐसी आत्यांतिक साहसिकता का अभ्यास करें, इसकी साधना करें। मानकर चलें कि ऐसी सत्यनिष्ठा ही निर्भयता की ओर ले जाएगी। यही भय और उद्विग्नता से बाहर निकलने का मार्ग प्रशस्त करेगी।

अज्ञानतावश ही लोग सत्य बोलने से भय खाते हैं। जबकि झूठ बोलने से उनका पूरा व्यक्तित्व अपराध-बोध से ग्रसित हो जाता है और वे दिन-प्रतिदिन दुर्बल होते जाते हैं और इंच-इंच कर जीवित ही मृतप्राय: बनते रहते हैं।

ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीर्ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति। —*ऋग्वेद 4/23/8*

अर्थात—सही कर्म अपना फल अवश्य देता है। उचित कर्त्तव्य की शक्तियाँ अनंत हैं, उचित बुद्धि पापों का नाश करती है।

अपराधबोध कभी भी व्यक्ति को निर्भय नहीं रहने देता। इसलिए सत्य की सर्वशक्तिमान सत्ता का बोध करें। मन, वचन और कर्म से सत्य का अभ्यास करें, यही साहसिक और आत्मविश्वासी बनने का मूलमंत्र है। इसके साथ आत्मचिंतन करें, ईश्वरभजन करें।

स्वामी विवेकानंद के शब्दों में, भय को काबू करने की रामबाण औषधि है—अपने वास्तविक स्व, आत्मा का बोध; जो जन्म-मृत्यु से रहित, अजर-अमर, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ है। एकमात्र आत्मा, या दूसरे शब्दों में भगवान परमात्मा ही सब भयों से मुक्त है।

इस आध्यात्मिक सत्य की ओर बढ़ना, इसमें जीना व संघर्ष करना तथा अंतत: इसमें प्रतिष्ठित होना, यही भय से मुक्ति व निर्भय जीवन का मूलमंत्र है। इसका उपासना के पलों में भाव करें, साधना के पलों में चिंतन-मनन करें तथा आराधना के पलों में अभ्यास करें। यही भय से मुक्ति का राजमार्ग है। ❑

महात्मा बुद्ध की अमृतवाणी

राजमहल के ऐशोआराम व सुख-वैभव में पले-बढ़े राजकुमार सिद्धार्थ एक दिन अपने सारथी के साथ रथ पर सवार होकर नगर-भ्रमण को निकले और भ्रमण के दौरान जब उन्होंने क्रमशः एक कृशकाय वृद्ध व्यक्ति को देखा, एक रोगी मनुष्य को देखा और लोगों के कंधों पर एक मृत व्यक्ति के शव को जाते देखा तो उन्हें मनुष्य जीवन की नश्वरता व सांसारिक सुख-वैभव की क्षणभंगुरता का ख्याल आया और तभी उनके मन में घोर वैराग्य जाग उठा।

फिर उसी वैराग्य भाव के कारण वे गृहत्याग कर अमरत्व की, मोक्ष की, ज्ञान की खोज में निकल पड़े। वर्षों की कठिन तपस्या के बाद अंततः उनके हृदय में ज्ञान का अमृत प्रकाश उतरा और वे सिद्धार्थ से गौतम बुद्ध बन गए और बोध होते ही बुद्ध जन-जन को ज्ञानामृत पिलाने को निकल पड़े। मार्ग में जाते हुए बुद्ध को देखकर एक व्यक्ति ने पूछा—"कहो! तुम कहाँ जा रहे हो और तुमने किस विचार से संसार का त्याग किया है ? तुम्हारा विचार क्या है ?"

तब गंभीर और शांत बुद्ध बोले—"मैंने सभी कामनाओं का दमन किया, मैंने इंद्रियों पर विजय प्राप्त की, मुझे महान ज्ञान हुआ, मैंने निर्वाण प्राप्त किया और अब मैं संसार को अमरत्व का संदेश देने जा रहा हूँ।" उस व्यक्ति के प्रश्नों का उत्तर देकर बुद्ध अपने मार्ग पर आगे बढ़ते गए, जहाँ उनके कुछ नए शिष्य बने और उन सबको उन्होंने अमृत संदेश देते हुए कहा—"हे शिष्यो! जिन्होंने संसार को त्याग दिया है, उन्हें ये दो बातें कभी नहीं करनी चाहिए—सर्वप्रथम जिन बातों से मनोविकार उत्पन्न होते हों और दूसरी वे तपस्याएँ, जो केवल शरीर को, मन को दुःख-कष्ट व पीड़ा देने वाली हैं। इन दोनों बातों को छोड़कर बीच का मार्ग (मध्यम मार्ग) अपनाओ, जिससे मन को शांति और पूर्ण आनंद अर्थात निर्वाण प्राप्त होता है।

उन्होंने चार आर्ष सत्यों को घोषित करते हुए कहा—"हे शिष्यो! संसार दुःखों से परिपूर्ण है, दुःखों का कारण भी है, दुःखों का अंत संभव है और दुःखों के अंत का उपाय भी है, मार्ग भी है।"

बुद्ध फिर बोले—"वत्स! सारा संसार यातनाओं से भरा पड़ा है। दुःख की जड़ क्या है और वह कहाँ है, इसकी खोज करो। तृष्णा और आसक्ति दुःख की जड़ हैं। दुःखरूपी पदार्थ को सुखदायी समझकर तुम व्यर्थ उसके पीछे पड़ रहे हो। सभी लोग अनित्य को नित्य, असत्य को सत्य और अनात्म को आत्मा मान काल्पनिक सुख का उपभोग करने की कोशिश कर रहे हैं। आसक्ति से मनुष्य अहंकारमय हो जाता है, वह बिलकुल विवेकहीन बन जाता है, जिसके फलस्वरूप वह बुरे कर्मों में लिप्त होकर दुःख की दलदल में और भी फँसता जाता है, जिससे बाहर निकल पाना उसके लिए संभव नहीं हो पाता।"

इसलिए सभी प्रकार के दुःखों से मुक्त होने व आनंद प्राप्ति, निर्वाण प्राप्ति के लिए सत्य दृष्टि, सत्य संकल्प, सत्य भाषण, सत्य कर्म, सत्य आजीविका, सत्य प्रयत्न, सत्य स्मृति (विवेक) और सत्य समाधि (एकाग्रता, ध्यान) आदि अष्टांग मार्ग का अपने जीवन में सदैव पालन किया करो।

इसके सिवा बुद्ध ने समय-समय पर अपने शिष्यों, अनुयायियों और जनसमुदाय को अन्य नीति-तत्त्वों का उपदेश करते हुए कहा—"मेरे प्रियजनो! हमारी आज की दशा हमारे बीते हुए कल के विचारों का, मनोभावों का, कर्मों का परिणाम है; इसलिए अपने वर्तमान विचारों, मनोभावों और कर्मों को शुद्ध करो, पवित्र करो तभी तुम सुख प्राप्त कर सकोगे। जिस तरह रथ खींचने वाले बैल के पीछे रथ का पहिया दौड़ता जाता है, उसी तरह जो मनुष्य अपने मन में कुबुद्धि धारण कर आचरण करता है, उसके पीछे-पीछे दुःख दौड़ता जाता है।"

भगवान बुद्ध आगे बोले—"उसी प्रकार मन में शुभ भावना अथवा सुविचार धारण कर जो मनुष्य अपना आचरण करता है, कर्म करता है, उसके पीछे-पीछे सुख छाया के समान सदैव बना रहता है। हे प्रियजनो! जिस तरह शिलामय पर्वत को वायु का झोंका नहीं गिरा सकता है, उसी प्रकार जिसने अपनी इंद्रियों पर पूरा अधिकार जमा लिया है, जिसका भोजन शुद्ध, सात्त्विक, नियमित और संतुलित रहता

है, जो श्रद्धावान और मन से सबल होता है, उसका काम और मोह बाल भी बाँका न कर सकेंगे।''

फिर अपने शिष्यों को सावधान करते हुए उन्होंने कहा—''वत्स! पाप का, कामादि विकारों का शमन किए बिना जो पीतवस्त्रों (भिक्षु वेश) को धारण करने की इच्छा करता है, जो साधना में नियमितता और सत्य की ओर जरा भी ध्यान नहीं देता, वह पीतवस्त्रों को धारण करने के लिए सर्वथा अयोग्य है, परंतु जिसने अंत:करण की मलिनता को दूर कर लिया है, जिसमें सारे सद्गुणों का विकास पूर्ण रीति से हो चुका है, जो साधना में; आहार में; व्यवहार में नियमितता और सत्य की ओर ध्यान देता है, वह पीतवस्त्रों को धारण करने के लिए सर्वथा योग्य है। जिस प्रकार अच्छी तरह न छाए गए घर में वर्षा की बूँदों का प्रवेश हो जाता है, उसी प्रकार कुविचारी और मलिन मन में विकारों का प्रवेश हो जाता है, पर जैसे अच्छी तरह से छाए गए मकान में वर्षा की बूँदें प्रवेश नहीं कर सकतीं, वैसे ही पवित्र और पूर्ण विचारशील मन में विकारों, वासनाओं और आसक्तियों आदि का प्रवेश नहीं हो पाता। इसलिए निरंतर तप-साधना में तपकर मन को पावन और निर्मल बनाए रखो। मन के निर्मल, पावन होने पर ही मनुष्य सदाचरण करता और सदाचारी होता है। वह पुण्य कर्म, शुभ कर्म करता है और ऐसे मनुष्य को ही इस लोक और परलोक में आनंद प्राप्त होता है।''

गौतम बुद्ध ऐसे अनेक अवसरों पर अपने अनुयायियों को अमृत संदेश देते रहे, ज्ञानामृत पिलाते रहे और उनके लिए आनंद और निर्वाण का मार्ग प्रशस्त करते रहे। जो सचमुच उनके उपदेशों को अपने जीवन में उतार पाए, वे सचमुच ही आनंद और निर्वाण को पाकर धन्य हो गए। ❑

एक रात जबरदस्त तूफान आया। पानी के तेज बहाव से एक बड़ा पत्थर टूटकर सड़क के बीचोंबीच आ गिरा। तभी वहाँ एक ठेले वाला आ गया। जहाँ पत्थर गिरा था, वहाँ आकर उसने ठेला रोक लिया। वह किसी के आने की प्रतीक्षा करने लगा। थोड़ी देर बाद दूसरा ठेले वाला आया। उसने पहले ठेले वाले से रास्ते में ठेला रोकने का कारण पूछा। कारण बताए जाने पर दूसरा ठेले वाला बोला—''क्यों न हम किसी शक्तिशाली व्यक्ति की प्रतीक्षा करें।'' धीरे-धीरे कुछ लोग और भी आ गए और किसी शक्तिशाली व्यक्ति के आने की प्रतीक्षा करने लगे।

तभी वहाँ स्वामी रामकृष्ण परमहंस के शिष्य स्वामी अखंडानंद पहुँचे। सारी बात समझकर वे बोले—''तुम लोग अपनी जवाबदेही दूसरों पर डालने की कोशिश मत करो। आओ सब मिलकर प्रयास करो।'' स्वामी जी के साथ अन्य सबने मिलकर कोशिश की तो पत्थर हट गया। स्वामी जी ने कहा—''हम हर समय दूसरों पर निर्भर रहते हैं। हमें लगता है कि कोई आकर हमारी समस्या का हल करेगा। कोई आगे बढ़कर स्वयं पहल नहीं करता। यदि हम ऐसा करने लगें तो जीवन की समस्याएँ स्वयं हल हो जाएँगी।''

पर्व विशेष

तमस् पर विजय के उद्घोष का ज्योति पर्व

आलोक पर्व दीपमालिका असत् पर सत् और तमस् पर ज्योति की विजय का सनातन उद्घोष है। यह पर्व निराशा के सघन अंधकार में आशा की किरण जगाता है, कृषक के उदास अधरों पर हर्ष की लाली बिखेरता है और मन के सूने आँगन में हर्षोल्लास की किरणें जगाता है। दीपमालिका पर्व वस्तुतः राष्ट्र को धन-धान्य से पूर्ण और सब प्रकार से संपन्न बनाने का विराट आयोजन है। यह पर्व मात्र अट्टालिकाओं की प्राचीरों को विद्युत बल्बों से आलोकित नहीं करता, अपितु निर्धन की कुटिया में आशा का दीप बनकर अपनी मधुर ज्योति भी बिखेरता है।

ज्योति पर्व कृषक समाज को नए धान्य के अभिनंदन की वेला प्रदान करता है, वणिक वर्ग में वर्षपर्यंत धन-धान्य से संपन्न रहने का सुमधुर विश्वास जगाता है तथा विद्वत् वर्ग को विद्यावारिधि का अक्षय आशीष प्रदान करके उन्हें राष्ट्रहित में अर्पित और समर्पित होने की प्रेरणा देता है।

अमावस्या की काली रात इस दिन दीपों से जगमगा उठती है। माता महालक्ष्मी का पदार्पण होते ही जन-जन के उदास ओंठों पर हँसी के फव्वारे फूट पड़ते हैं, निराश नयन प्रसन्नता से चहक उठते हैं और बाल-मंडली हर्षोल्लास से ऐसे प्रफुल्लित हो उठती है, मानो माता महालक्ष्मी आँगन में थिरकती हुई आई हों। उन्होंने बालकों को अपनी गोद में उठाकर चूमा हो, और फिर उन्हें अभय का वरदान देकर वे मुस्कराती हुई दीपों की अनवरत पंक्ति में कहीं विलीन हो गई हों।

यह जनमानस की भ्रांति है कि माता महालक्ष्मी मात्र धन और ऐश्वर्य की देवी हैं। वे चंचला, अस्थिर, प्रकृति और विद्या की देवी सरस्वती से बैर रखने वाली हैं। ऋग्वेद के श्रीसूक्त के अनुसार श्री (लक्ष्मी), कांतिमय, तेजोमय एवं कामनाएँ पूर्ण करने वाली देवी हैं, जो हिरण्यमयी (स्वर्णमयी) ज्योति से संपन्न हैं, जो देवों को तृप्त करने वाली हैं, कमलदल पर विराजमान हैं और कमल-सदृश वर्ण वाली हैं—

कान्तिस्मितां हिरण्यप्रकाशामाद्रां,
उत्कथन्तां तृप्तिर्तप्यान्ताम्।
पद्मे स्थितां पद्मवर्णा,
तामिहोपाश्रये श्रियाम्॥

यजुर्वेद में श्री (लक्ष्मी) का अर्थ तेज बताया गया है। अथर्ववेद के '**श्री देव्यथर्वशीर्षम्**' प्रकरण में ब्रह्मस्वरूपिणी, आदिशक्ति स्वरूपा महालक्ष्मी निम्नांकित रूप में अपना स्वरूप स्वयं कहती हैं—

अहं दधामि द्रविणा हविष्मते,
सुप्राव्या३ यजमानाय सुन्वते।
अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां,
चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्॥
अहं सुवे पितरमस्य,
मूर्धन्मम योनिरप्स्व१न्तः समुद्रे।
य एवं वेद स दैवीं सम्पदमाप्नोति।
महालक्ष्म्यै च विग्रहे सर्वशक्त्ये च धीमहि।
तन्नो देवी प्रचोदयात्॥

उपर्युक्त मंत्रों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक साहित्य में लक्ष्मी को आदिशक्तिस्वरूपा, सर्वव्यापी पराशक्ति माना गया है। महालक्ष्मी ही देवों की समस्त विकृतियों (अवतारों) की प्रधान प्रकृति हैं। स्थूल-सूक्ष्म, दृश्य-अदृश्य, व्यक्त अथवा अव्यक्त सब उन्हीं के विविध रूप हैं। अस्ति, भाति, प्रिय नाम और रूप सब वे ही हैं। वे सच्चिदानंदमयी परमेश्वरी सूक्ष्मरूप से सर्वत्र व्याप्त होती हुई भी भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए परम दिव्य, चिन्मय, सगुण रूप से सदा विराजमान रहती हैं।

महालक्ष्मीर्महाराज सर्वतत्त्वमयीश्वरी।
निराकारा च साकारा सैव नानाभिधानभूत॥
नामान्तरैर्निरूप्यैषा नाम्ना नान्येन केनचित्॥

महालक्ष्मी समस्त वसुओं (संपत्तियों) की जन्मदात्री हैं। वे देवों को उत्तम हवि पहुँचाती हैं। सोमरस निकालने वाले यजमान के लिए हविद्रव्यों से युक्त धन को वे धारण

जीवन के लिए जल अत्यंत आवश्यक है। हमारे शरीर का अधिकांश भाग जलीय तत्त्व का बना हुआ है। जल की उपयोगिता देखकर मनुष्य ने अपने रहने के लिए स्थायी निवास किसी नदी, तालाब अथवा झील के समीप ही बनाया है। शुद्ध जल हमें लंबी आयु देता है। यह हमारे प्राणों का रक्षक एवं कल्याणकारी है। इस भावना को निम्न मंत्र द्वारा व्यक्त कर रहे हैं—

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शं योरभि स्त्रवन्तु नः ॥

चेहरे पर कांति तथा शरीर की कोमलता में भी जल का भाग होता है। हमारे भोजन के पचाने में भी जल सहायता देता है। तरल पदार्थ शरीर में जल्दी पच जाते हैं। इस ऋचा में इसे इस तरह व्यक्त किया गया है—

आपो भद्रा घृतमिदाप आसन्नग्नीषोमो
बिभ्रत्याप इत् ताः।
तीव्रो रसो मधुपृचामरंगम आ मा
प्राणेन सह वर्चसा गमेत् ॥

जल से घृत के समान सारमय पदार्थ उत्पन्न होते हैं। जल, अग्नि अर्थात जठराग्नि, विद्युत, बड़वानल आदि में प्रयुक्त होकर अन्नादि उत्पन्न करके प्राणियों का बल और तेज बढ़ाता है। जल के यथावत् प्रयोग से प्राणी में दर्शन, शक्ति तथा श्रवणशक्ति और 'घोष' ध्वन्यात्मक शब्द तथा 'वाक्' वर्णनात्मक शब्द बोलने की शक्ति आती है।

इस प्रकार मनुष्य सुवर्णादि धन की प्राप्ति से, भूख आदि से मृत्यु दुःख का त्याग करके अमृत अर्थात आनंद को प्राप्त करता है। अथर्ववेद में बताया गया है कि देखने-सुनने एवं बोलने की शक्ति बिना जल के संभव नहीं है। जल ही जीवन है। इस विचार को ध्यान में रखकर ही वेदों के ऋषियों ने जलधाराओं को अपने समीप आमंत्रित किया है। जल में प्रवेश करने की उनकी उत्कट अभिलाषा मंत्रों में दिखती है।

इंद व आपो हृदयमयं वत्स ऋतावरीः।
इहेत्थमेत शक्वरीर्यत्रेदं वेशयामि वः ॥

हे प्राप्तियोग्य जलधाराओ! यह तुम्हारा स्वीकार करने योग्य कर्म है। हे सत्यशील जलधाराओ! यह निवास देने योग्य आश्रय है। हे शक्तिशालियो! इस प्रकार से यहाँ पर आओ, यहाँ तुम्हारे जल में मैं प्रवेश करूँ। फलों के मधुर रसों में भी पानी का अंश होता है। जल हमारे लिए माता के समान है।

यो नः शिवतमो रसस्तस्य भाज्यतहनः।
उशतीरिवमातरः ॥

जल जो कि अन्न-वनस्पति आदि का स्वामी है और मनुष्यों को निवास देने वाला है, औषध रूप है, उसको नमन करते हैं। अथर्ववेद में ईश्वर-उपासना के कई कारण बताए गए हैं।

उनमें से एक कारण यह है कि वह सूखे के समय अकाल से पानी की वर्षा करके हमारे क्लेशों का अंत करता है। वेदों में जल की उपयोगिता बताने वाले अनेक मंत्र हैं।

पर्यावरण के इस महत्त्वपूर्ण घटक की स्थिति आज बहुत संवेदनशील हो गई है। हमने अपनी शोषक वृत्ति के कारण जल को मृत्यु का वाहक बना दिया है। नदी तट पर बसे हुए महानगरों एवं शहरों का संपूर्ण मल-मूत्र एवं कूड़ा-कचरा जलाशयों में डाल दिया गया है। कल-कारखानों का जहरीला तेजाबयुक्त पानी भी बहती हुई नदियों में डालते हुए हमने कभी नहीं सोचा कि हम अपने इस कुकर्म द्वारा पृथ्वी के अमृत को विष में बदलते चले जा रहे हैं।

मृत मानव शरीर एवं पशुओं को भी बिना सोचे-समझे सीधा नदी में बहा देते हैं। कारखानों से निकला हुआ जहरीला धुआँ वर्षाकाल में वर्षा के जल में घुलकर काले पानी के रूप में बरस रहा है। जलीय जंतुओं पर भी इसका प्रभाव पड़ रहा है।

यदि यही स्थिति बनी रही तो वैज्ञानिकों के अनुसार अगला विश्वयुद्ध पानी के लिए होगा। जीवन के लिए जल अत्यंत जरूरी है और उसका संरक्षण भी अति आवश्यक है। ❑

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

खाओ-पीओ-मौज करो। इसके सिवा जिंदगी में है ही क्या? इसे ही तो जिंदगी कहते हैं। जीवन में अक्सर हमें ऐसी लोकोक्तियों से दो-चार होना ही पड़ता है। ऐसी लोकोक्तियों के द्वारा लोग अक्सर एकदूसरे को जीवन को जी भर के जीने की प्रेरणाएँ देते देखे व सुने जाते हैं, पर 'खाना-पीना और जीना' क्या यही जिंदगी है? क्या यही जीवन है? 'पेट-प्रजनन, परिवार के लिए जीना व क्षणिक भौतिक सुखों के पीछे भागते-भागते अपने जीवन को समाप्त कर लेना' क्या इसे ही जीवन कहते हैं? क्या यही वह जिंदगी है, जिसे शास्त्रों ने देवदुर्लभ कहा है?

ऐसे सभी प्रश्नों का उत्तर निश्चित ही 'हाँ' तो नहीं ही हो सकता। ऐसे तमाम सवालों का एक ही उत्तर है, वह है—नहीं, नहीं और बिलकुल नहीं; क्योंकि यदि मानव जीवन पेट-प्रजनन की पूर्ति मात्र में ही व्यतीत हो गया तो फिर मानव जीवन और पशु जीवन में अंतर ही क्या रहा? क्योंकि पेट और प्रजनन के लिए तो पशु व अन्य जीव भी जीवन जीते ही हैं।

जिस मनुष्य को परमात्मा का सर्वश्रेष्ठ राजकुमार कहा गया है; जिस मानव जीवन को देवदुर्लभ कहा गया है; जिस जीवन को मनुष्य के लिए विधाता का एक अनुपम उपहार कहा गया है, वह जीवन निश्चित ही पेट-प्रजनन मात्र के लिए जीने व मरने के लिए तो नहीं हुआ है। वह जीवन निश्चित ही किसी बड़े उद्देश्य के लिए मिला है। वह जीवन निश्चित ही किसी बड़े लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मिला है।

मानव जीवन तो पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति के लिए मिला है, पर अर्थ और काम के पीछे दौड़ते-भागते हुए ही बहुतों का जीवन समाप्त हो जाता है। धर्म और मोक्ष को पाए बिना ही हममें से बहुतों का जीवन अस्त हो जाता है। इस प्रकार अपनी अनमोल जिंदगी को नष्ट करने वाले लोग जीवन भर अपने आप को यह कहकर धोखा देते रहते हैं कि यदि इस संसार की सुविधाओं का, विषयभोगों से मिलने वाले सुख का भोग नहीं किया तो फिर ऐसी जिंदगी से क्या मतलब? ऐसी जिंदगी से क्या लाभ?

सच तो यह है कि जीवन भर भोगों को भोगते रहने के बाद भी व्यक्ति का मन उनसे अघाता नहीं। जीवन भर विषयों का, भौतिक सुख-सुविधाओं का भोग करते रहने के बावजूद भी मन को तृप्ति मिलती नहीं, हमारी इंद्रियाँ अंततोगत्वा अतृप्त ही रहती हैं और ऐसा हो भी क्यों न? आखिर रेगिस्तान में जल पाकर प्यास बुझाने की मृगतृष्णा किसी की कब बुझी है?

पर मृगतृष्णा चीज ही ऐसी है कि यह हमें जो चीज है ही नहीं, उसी के होने का आभास दिलाती है। यह हमारे समक्ष दुःख को सुख और सुख को दुःख के रूप में प्रस्तुत करती है। यह अनित्य को नित्य और नित्य को अनित्य बताती है। यह क्षणिक इंद्रिय सुख को सब कुछ और शाश्वत सुख को तुच्छ बताती है। यही तो अज्ञान है, यही तो माया है। जो चीज नहीं है, उसी के होने का आभास होना— यही तो माया है।

हम इंद्रियों को तृप्त कर देने के प्रयास में जीवन भर भोगों को भोगते फिरते हैं, पर फिर भी वे अतृप्त ही रहती हैं। दरअसल अज्ञान व माया के कारण ही हमें संसार के भोगों में सुख का क्षणिक आभास दीख पड़ता है। हमें लगता है कि हमारे मन में उठने वाली कामनाओं, वासनाओं, तृष्णाओं की पूर्ति से हमें तृप्ति मिलेगी। अस्तु हम तृष्णाओं की पूर्ति में दौड़ते-भागते फिरते हैं, पर आखिरकार वे अतृप्त ही रहती हैं।

इसी भाग-दौड़ में जब जीवन की संध्यावेला आ जाती है, तब हमारे पास सिवा पश्चात्ताप करने के कुछ भी शेष नहीं रह जाता। अनमोल जिंदगी को यों ही नष्ट कर देने की पीड़ा अंततोगत्वा हमें बहुत रुलाती है, सताती है। पर अब करें भी तो क्या करें? अब पछताए होत क्या, जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत? अब जीवनरूपी समय समाप्त हो चुका। धर्म और मोक्ष जैसे लक्ष्य को पाने का साधन हमारा मनुष्य शरीर ही तो था, पर अब यह जीर्ण-शीर्ण हो चला।

अब इसके समाप्त होने की वेला आ गई। अब इस जीर्ण-शीर्ण शरीर से भजन-ध्यान करना भी कहाँ संभव रहा? ऐसी घुटन भरी जिंदगी जीते हुए, प्रारब्धजन्य कर्मों का फल भोगते हुए, दु:खी मन से, आत्मग्लानि के बोझ तले दबा व्यक्ति अंतत: इस संसार से विदा हो जाता है।

कर्मफलानुसार व्यक्ति की आत्मा फिर से नूतन शरीर धारण करती है। इस प्रकार जन्म-मरण के चक्र में फँसी, बँधी हुई आत्मा अपनी मुक्ति के लिए चीत्कार करती रहती है। जीवात्मा जन्मों-जन्मों तक भटकती फिरती है और सभी प्रकार के दु:खों से मुक्त होने तथा शाश्वत सुख की प्राप्ति के लिए हाहाकार करती हुई शरीररूपी वस्त्र बदलती फिरती है और यह क्रम तब तक चलता ही रहता है, जब तक आत्मा—परमात्मा का सान्निध्य, परमात्मा का स्पर्श नहीं पा लेती और स्वयं को मुक्त नहीं कर लेती। पर भोगों में आकंठ, आसक्त जीवात्मा को परमात्मा का स्पर्श मिले भी तो कैसे?

परमात्मा का स्पर्श पाने के लिए तो व्यक्ति को भौतिकवादी जीवन-दृष्टि अर्थात खाओ-पीओ-मौज करो वाली दृष्टि के बजाय आध्यात्मिक जीवन-दृष्टि अपनानी ही होगी। भौतिकवादी जीवन अर्थात देहपरायण, स्वार्थपरायण जीवन। आध्यात्मिक जीवन अर्थात आत्मपरायण, परमार्थपरायण जीवन, भगवत्परायण जीवन। आध्यात्मिक जीवन अर्थात त्याग और तपस्या का जीवन, साधना और वैराग्य का जीवन।

यही वह जीवन है, यही वह मार्ग है जिसे जीकर, जिस पर चलकर सिद्धार्थ भगवान बुद्ध बन गए, महावीर तीर्थंकर बन गए, नरेंद्र विवेकानंद बन गए, मूलशंकर स्वामी दयानंद सरस्वती बन गए, शंकर आचार्य शंकर बन गए और ऐसे अगणित लोग निहाल हो गए, बुद्ध हो गए। यह जीवन एक यात्रा है। मनुष्य ही नहीं अन्य पशु-पक्षी भी तो अपने तरीके से अपनी जीवनयात्रा पूरी करते ही हैं, पर मनुष्य और अन्य जीवों की जीवनयात्रा में एक मौलिक अंतर है। मनुष्य से भिन्न पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि निम्न योनियों की यात्रा कर्मफल के परिणामस्वरूप, प्रकृति के द्वारा संचालित होती है।

योनि-विशेष के नियमों के अनुसार उन्हें बाध्य होकर चलना पड़ता है तथा समय आने पर उनकी मृत्यु हो जाती है। इन योनियों में केवल अपने कृतकर्मों का भोग करना होता है। इसलिए ये भोग-योनियाँ कहलाती हैं, किंतु मनुष्य योनि में यह बात नहीं है।

मनुष्य स्वतंत्र है और वह अपनी यात्रा को स्वयं निर्धारित कर सकता है। वह स्वयं तय कर सकता है कि उसे किस मार्ग से होकर यात्रा करनी है। वह चाहे तो पशुओं आदि की तरह निम्न भोगों में डूब सकता है, पेट और प्रजनन की संकीर्ण परिधि में ही यात्रा कर सकता है और अपनी जीवनलीला समाप्त कर सकता है।

दूसरा रास्ता यह है कि मनुष्य इन भोगों से विरत होकर उच्च, दिव्य आध्यात्मिक जीवन की ओर अग्रसर हो सकता है। अस्तु यह सर्वथा स्वयं मनुष्य पर निर्भर करता है कि वह किस मार्ग का वरण करे। वह निम्न योनियों की भाँति भोगों में डूबकर, पेट-प्रजनन मात्र में संलग्न, आसक्त रहकर पीड़ा, पतन और बंधन को अंगीकार करे अथवा आध्यात्मिक जीवन-दृष्टि अपनाकर, आध्यात्मिक व योगमय जीवन जीते हुए, अपनी आत्मचेतना का परिष्कार करते हुए, भोगमय जीवन से मुक्त होते हुए मोक्ष, मुक्ति की अवस्था को प्राप्त होकर शाश्वत सुख, शांति, सौभाग्य, सौंदर्य व परम आनंद को प्राप्त करे।

यह सब कुछ स्वयं मनुष्य के उपर निर्भर करता है। क्यों? क्योंकि मनुष्ययोनि भोगयोनि नहीं, बल्कि कर्मयोनि है। अस्तु अपने श्रेष्ठ कर्मों, शुभ कर्मों, निष्काम कर्मों के द्वारा व्यक्ति सभी प्रकार के दु:ख-द्वंद्वों से मुक्त होकर भौतिक जीवन को सुख-सौभाग्य व शांति-समृद्धि से भर लेने के साथ-साथ मोक्ष, मुक्ति व भगवत्प्राप्ति के रूप में परम आनंद को भी प्राप्त कर सकता है।

मनुष्य में यह स्वतंत्रता है और सामर्थ्य भी कि वह जीवनयात्रा में किसी भी समय अपनी इच्छानुसार अपनी यात्रा की दिशा बदल सकता है। तभी तो स्वामी विवेकानंद व युगऋषि पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जैसे महान ऋषियों व मनीषियों ने यह स्पष्ट घोषणा की कि मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है। सत्य यह भी है कि इस आध्यात्मिक यात्रा में किसी समर्थ गुरु का सान्निध्य, संरक्षण व मार्गदर्शन आवश्यक है।

समर्थ गुरु से तात्पर्य किसी ऐसे सद्‌गुरु से है, जो ऋषि-मनीषी व ब्रह्मज्ञानी हों। यदि ऐसे सद्‌गुरु भौतिक शरीर में नहीं भी हों तो भी कोई बात नहीं। ऐसे सद्‌गुरु भौतिक शरीर में न रहते हुए भी हमारी आध्यात्मिक यात्रा में

सहायक हो सकने में सर्वथा समर्थ होते हैं। सूक्ष्मरूप में व्याप्त उनकी सार्वभौम व सर्वव्यापी चेतना हमेशा ही सक्रिय रहती है और सच्चे साधकों, भक्तों का पग-पग पर संरक्षण व मार्गदर्शन करती है। पूज्य गुरुदेव आज भले ही भौतिक शरीर में न हों, पर उनकी सर्वव्यापी व सार्वभौम चेतना आज भी सर्वत्र उतनी ही सक्रिय है, जितनी उनके भौतिक शरीर में रहते हुए थी।

पूज्य गुरुदेव जैसे वीतराग पुरुषों को हम अपने गुरुरूप में वरण कर अपनी आध्यात्मिक यात्रा में उनका सान्निध्य, साहचर्य व संरक्षण पा सकते हैं और जीवन के परम लक्ष्य को पा सकते हैं। ऐसे वीतराग महापुरुषों के विषय में ही तो ऋषिवर पतंजलि योगसूत्र (1.37) में कहते हैं— **'वीतरागविषयं वा चित्तम्'** अर्थात जिस पुरुष के राग-द्वेष सर्वथा नष्ट हो चुके हैं, ऐसे विरक्त पुरुष को ध्येय बनाकर अभ्यास करने वाला अर्थात उसके विरक्त भाव का मनन करने वाला चित्त भी स्थिर हो जाता है।

युगऋषि श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने सर्वसाधारण व समस्त साधकों, भक्तों व शिष्यों के लिए आध्यात्मिक जीवन, आध्यात्मिक यात्रा को उपासना, साधना और आराधना के रूप में प्रस्तुत किया है। उपासना अर्थात पास बैठना। किसके पास बैठना? अपने आराध्य, अपने भगवान के पास बैठना, पर मात्र देह से नहीं, बल्कि मन से ईश्वर के पास बैठना। ईश्वर का चिंतन-मनन, ध्यान करते-करते मन का ईश्वर में लीन हो जाना ही सच्ची उपासना है। हम उपासना के अंतर्गत अपने हृदय में नित्य अपने गुरु की मधुर छवि, उनके विरक्त भाव का ध्यान कर सकते हैं।

पर हाँ! इसके लिए साधक के हृदय में अपने आराध्य, अपने गुरु, अपने भगवान के प्रति अटूट, अखंड व अगाध श्रद्धा, विश्वास व भक्ति का होना भी आवश्यक है; क्योंकि उनकी दिव्य, उच्चस्तरीय व सार्वभौम चेतना को अखंड व अगाध श्रद्धा, भक्ति व विश्वास के बल पर ही आकर्षित किया जा सकता है व उनका आशीष, अनुग्रह, अनुदान, वरदान व मार्गदर्शन प्राप्त किया जा सकता है। उनके बताए मार्ग पर अनवरत चलते रहने से ही उनकी कृपा व आध्यात्मिक ऊर्जा साधक के अंदर संप्रेषित हो सकती है।

इस प्रकार श्रद्धा, भक्ति व विश्वास के साथ उपासना के दौरान मन की आँखों से अपने आराध्य की मधुर-मनोहर छवि का दर्शन करते हुए उनकी दिव्यता, पवित्रता, महानता, करुणा, प्रेम, संवेदना, सत्य आदि दिव्यगुणों का चिंतन-मनन भी करते रहें, जिससे कि हमारे हृदय में भी करुणा, प्रेम, सत्-चित्-आनंदरूपी प्रभु का अवतरण हो सके। हममें करुणा, प्रेम व संवेदना का अक्षय स्रोत फूट सके, बह सके और हम भी दिव्यता, पवित्रता को धारण कर दिव्य बन सकें। अपने आराध्य, अपने भगवान की मधुर-मनोहर, ध्यानस्थ, समाधिस्थ भावदशा का हम अपने हृदय में नित्य ध्यान कर सकते हैं। ऐसा करने से हमारे राग-द्वेष मिटते हैं, कर्म-संस्कार मिटते हैं और अंततः हमारा मन निर्मल होता है और भगवत्प्राप्ति होती है।

भोजन बनाना कठिन हो सकता है, पर परोसने में क्या कठिनाई? घड़ी बनाना कठिन हो सकता है, पर उसका उपयोग करने में, दूसरों को समय बता देने में क्यों असुविधा पड़ेगी?

ज्ञान प्रसार के व्रतधारी 'अखण्ड ज्योति संस्थान' द्वारा युग निर्माण के लिए प्रस्तुत की जाने वाली प्रचंड एवं प्रखर विचारधारा को जनसाधारण तक पहुँचाने में एक संदेशवाहक का कार्य तो आसानी से कर सकते हैं। थोड़ी-सी अभिरुचि एवं प्रवृत्ति इस ओर मुड़नी चाहिए।

कुछ दिनों इसे अपने स्वभाव में सम्मिलित करने की कठिनाई रहेगी, पर यह सब जैसे ही अभ्यास बनेगा, वैसे ही एक धर्मसेवा की—ज्ञानयज्ञ की एक महान प्रक्रिया चल पड़ेगी और साधारण व्यक्ति भी युग निर्माण के लिए एक उपयोगी परमार्थ करने का श्रेय लाभ लेने लगेगा। —*परमपूज्य गुरुदेव*

उपासना के अंतर्गत हम अपनी रुचि, श्रद्धा व भक्ति के अनुसार भगवान श्रीराम, श्रीकृष्ण, शंकर, हनुमान, दुर्गा, काली, गायत्री आदि में से किसी को भी अपने आराध्य के रूप में वरण कर उनकी मधुर-मनोहर छवि का अपने हृदय में नित्य ध्यान कर सकते हैं।

चूँकि ईश्वर गुरुओं के भी गुरु हैं, आदिगुरु हैं, इसलिए ईश्वर के सगुण या निर्गुण, साकार या निराकार—किसी भी रूप का, स्वरूप का हम अपने हृदय में नित्य ध्यान कर सकते हैं। उन्हें हम गुरु व आराध्य, दोनों मान सकते हैं। सर्वव्यापी, सर्वशक्तिशाली, सर्वज्ञ ईश्वर का हृदय में नित्य ध्यान करने से साधक को अपनी आत्मा में सत्-चित्-आनंदरूपी ईश्वर की प्रत्यक्ष अनुभूति होने लगती है।

इसके अतिरिक्त हम उदीयमान सूर्य (सविता देवता) का अपने हृदय में नित्य ध्यान कर सकते हैं। सविता देव का नित्य ध्यान करते-करते अंततः साधक की आत्मा भी सविता देव के दिव्य प्रकाश से प्रकाशित होकर परमात्मा की अनुभूति करने लगती है। हाँ! सविता देव का ध्यान करते हुए यदि चाहें तो हम सार्वभौम गायत्री महामंत्र का मानसिक जप भी कर सकते हैं।

उपासना के साथ-साथ साधना भी जरूरी है। साधना अर्थात संयम। वाणी संयम, समय संयम, अर्थ संयम व इंद्रिय संयम का नित्य अभ्यास ही साधना है। खान-पान का संयम, सात्त्विक आहार लेने का भी साधना में विशेष महत्त्व है। बेईमानी या अन्य अनुचित तरीके से प्राप्त धन या अन्न का सेवन करने से चित्त कलुषित होता है और इससे उपासना में मन नहीं लगता।

सात्त्विक आहार के साथ-साथ जीवन में सत्य, अहिंसा, ईमानदारी आदि का पालन भी आवश्यक है। असत्य, हिंसा, बेईमानी आदि कर्म करने से चित्त कलुषित व चंचल होता है, जिससे भगवद्‌भजन, ध्यान, सुमिरन में साधक का मन नहीं लगता। वह कर्मसंस्कारों के बंधन में बँधकर मोक्ष—मुक्ति जैसे परम लाभ से वंचित हो जाता है।

गीताकार ने गीता (2.66) में कहा है—जो मन चंचल है, अनियंत्रित है, उसमें आत्मा को पहचानने की क्षमता नहीं होती। वह फिर कैसे ध्यान कर सकता है? बिना ध्यान के शांति नहीं मिलती। अस्तु जीवन में हम जो भी शुभ कर्म, पुण्य कर्म करें, उन्हें ईश्वर को अर्पित, समर्पित करते चलें।

कर्त्तापन की भावना से प्रेरित होकर कोई कर्म न करें, बल्कि ईश्वरीय भावना के साथ कर्म करें। जीवन में सदैव सच्चाई व ईमानदारी का पालन करें। इस प्रकार शुभ कर्म व निष्काम कर्म करने से कर्म का कोई संस्कार नहीं बनता, बल्कि इससे हमारी चित्त-शुद्धि होती है और इससे हमारे लिए मोक्ष, मुक्ति व भगवद्दर्शन का मार्ग प्रशस्त होने लगता है। ऐसा व्यक्ति फिर इस जगत् में ईश्वर के यंत्र व उपकरण मात्र के रूप में कर्मफल की इच्छा से मुक्त होकर कर्म करता जाता है।

साधना के साथ ही आराधना का भी विशेष महत्त्व है। आराधना यानी सेवा। किसकी सेवा? भगवान की सेवा। भगवान की सेवा अर्थात इस जगत् रूप, ब्रह्मांड रूप भगवान की सेवा, नर रूपी नारायण की सेवा, समाज की सेवा। यह पूरा विश्व-ब्रह्मांड सर्वव्यापी, भगवान की ही तो अभिव्यक्ति है। अस्तु जगत् की सेवा, जीवमात्र की सेवा ही भगवत् सेवा है। मानव सेवा ही माधव सेवा है। नर सेवा ही नारायण सेवा है। तभी तो स्वामी विवेकानंद ने कहा है कि मैं उस प्रभु का सेवक हूँ, जिसे अज्ञानी लोग मनुष्य कहते हैं। हम अपने श्रम, समय, धन, प्रतिभा आदि से समाज सेवा, जीव सेवा करके साक्षात् भगवत् सेवा ही तो करते हैं। यही वास्तविक भगवद्आराधना है, भगवत् सेवा है।

उपासना, साधना, आराधना के साथ-साथ स्वाध्याय भी बहुत आवश्यक है। गीता, रामायण, वेद, उपनिषद्, पुराण, ब्रह्मज्ञानी महापुरुषों द्वारा रचित सत्साहित्य या उनके उपदेशों का नित्य अध्ययन, श्रवण-मनन करने से साधकों को नित्य नई प्रेरणाएँ मिलती हैं, साधना संबंधी शंकाओं का निराकरण होता है एवं साधकों के मन में आने वाले द्वंद्व आदि समाप्त होते हैं। अपने आराध्य के प्रति उनकी श्रद्धा-भक्ति गहरी होती जाती है।

महर्षि पतंजलि के अनुसार तो स्वाध्याय से साधक को अपने इष्ट का, आराध्य का दर्शन भी होने लगता है। इस प्रकार की आध्यात्मिक जीवनचर्या को जीते हुए साधक अपनी जीवनयात्रा के चरमलक्ष्य मोक्ष, मुक्ति, भगवद्दर्शन, परम आनंद आदि को सहज ही प्राप्त कर लेता है और अपने जीवन को धन्य कर लेता है, स्वयं को निहाल कर लेता है।

इस प्रकार जब साधक अपनी आध्यात्मिक जीवन यात्रा के अंतिम पड़ाव पर पहुँचता है तो उसे अपने वास्तविक

स्वरूप अर्थात सत्-चित्-आनंदस्वरूप का बोध होने लगता है एवं उसे अपनी आत्मा में सत्-चित्-आनंदस्वरूप प्रभु की अनुभूति होने लगती है। तब उसे पल-पल परम आनंद की अनुभूति अपनी आत्मा में ही होने लगती है। जैसा कि ऋषिवर पतंजलि ने योगसूत्र 1.3 में कहा है—'**तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्**।' अर्थात उस समय द्रष्टा (आत्मा) की अपने वास्तविक स्वरूप में स्थिति हो जाती है अर्थात वह कैवल्य अवस्था को प्राप्त हो जाता है।

इस प्रकार साधक की जीवनयात्रा सानंद पूरी होती है, सफल होती है। आवश्यकता इस बात की है कि हम नित्य ब्राह्ममुहूर्त में उठकर नित्यक्रिया से निवृत्त होकर ब्राह्ममुहूर्त की मधुर वेला, अमृत वेला में प्रज्ञायोग, सूर्य नमस्कार, अनुलोम-विलोम, प्राणाकर्षण प्राणायाम व भ्रामरी प्राणायाम आदि योगाभ्यास कर लेने के बाद उपासना के लिए बैठ जाएँ। उपासना में नियमितता बनी रहे, यह जरूरी है। उपासना में अर्जित आध्यात्मिक ऊर्जा का क्षरण न हो सके, इस हेतु साधना करें अर्थात इंद्रिय संयम का पालन करें।

हमें जीवन में सदैव ईश्वरीय अनुशासन का पालन करना चाहिए। जैसा कि युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने कहा है कि हम ईश्वर को सर्वव्यापी, न्यायकारी मानकर उसके अनुशासन को अपने जीवन में उतारेंगे।

अन्न का हमारे मन पर बड़ा असर होता है। इसलिए कहा गया है कि जैसा खाए अन्न, वैसा भए मन। सात्त्विक अन्न से ही मन सात्त्विक होता है और सात्त्विक मन ही ध्यान, भजन के अनुकूल होता है। हमारे द्वारा ग्रहण किए गए आहार का हमारे व्यवहार पर बड़ा व्यापक असर होता है। अस्तु शुद्ध, सात्त्विक आहार ही ग्रहण करें। ऋतुफल, शाक-सब्जी, गोदुग्ध आदि ग्रहण करें।

शाम में हलका या अल्पाहार लें, जिससे नित्य ब्राह्ममुहूर्त में उठने में कोई दिक्कत न हो। इसके अलावा परदोषदर्शन, निंदा, चुगली, दूसरों की बुराई करने या चाहने से बचें; क्योंकि ऐसी नकारात्मक चीजें भगवद्भक्ति, भजन, ध्यान में बाधक हैं, साथ ही इनसे उपासना से प्राप्त आध्यात्मिक ऊर्जा का क्षरण भी होता है।

नित्य जन सेवा, समाज सेवा के रूप में भगवद्आराधना भी करते रहें। इस प्रकार की आध्यात्मिक जीवनशैली से ही हमारी आध्यात्मिक यात्रा पूरी हो सकती है और हम परब्रह्म और परमानंद जैसे परम लक्ष्य को पा सकते हैं। ❑

****

शिशुपाल ने भगवान श्रीकृष्ण को गाली देनी प्रारंभ की। भगवान ने मुस्कराते हुए सारा अपमान सहन किया। जब भगवान ने कोई उत्तर नहीं दिया तो शिशुपाल का एक मित्र, उन्हें उकसाने के भाव से बोला—"ये इसलिए कुछ नहीं बोल पा रहे हैं; क्योंकि जो शिशुपाल बोल रहा है, वह अक्षरशः सत्य है। इसने श्रीकृष्ण को निरुत्तर कर दिया है। यह शिशुपाल की विजय हुई।"

यह सुनकर सात्यकि खड़े हुए व बोले—"बंधु! तुम्हें भगवान श्रीकृष्ण का शांत, सौम्य व निर्विकार मुख दिखाई पड़ता है? क्रोध के पराधीन तो शिशुपाल है—वह तो अपने क्रोध से ही हार गया, भगवान को इसे हराने की आवश्यकता भी कहाँ पड़ी?" बाद में शिशुपाल को भगवान ने भगवद्धाम पहुँचाया, पर सत्य है कि जो अपनी वृत्तियों के पराधीन है, वही वास्तव में हारा हुआ है।

****

खुशी का रहस्य

मनुष्य का स्वभाव है कि वह किसी अच्छी लगने वाली या सुख देने वाली चीज के पीछे भागता रहता है, लेकिन यह जरूरी तो नहीं कि वे चीजें आपको खुशी ही दें। कई बार तो इसके विपरीत वे आपको दु:ख भी पहुँचा सकती हैं, आपको नुकसान भी पहुँचा सकती हैं। जीवन के अनुभवों में मिलने वाला यह एक ऐसा सच है, जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता है। इन अनुभवों से गुजरने पर भी ऐसा नहीं कि खुश रहने की कोशिश छोड़ दी जाए। यह इच्छा तो रहती ही है।

खुश तो रहना है हमें, पर हरदम ऐसा संभव नहीं है और हमेशा खुश रहने या खुश दिखने का यह दबाव दरअसल हमारी सामाजिक नासमझी के कारण होता है। नासमझी के कारण ही हम जिंदगी में आने वाले हर अनुभव को समझकर उसका स्वागत नहीं कर पाते, बल्कि खुशी के पीछे भागते रहते हैं। खुशी के सच को समझने के लिए हमें ये बातें समझनी होंगी।

किसी का मुस्कराना, उसकी खुशी का एक मजबूत संकेत दे सकता है, लेकिन हर वक्त मुस्कराना खुश रहने का संकेत नहीं है। ज्यादातर लोग खुशी को नकारात्मक भावों की अनुपस्थिति मानते हैं यानी आपको हर वक्त खुश रहना है, हमेशा हँसते रहना है, ठहाके लगाना है, आनंद में रहना है और जीवन में यदि कुछ नकारात्मक हो रहा है तो उन एहसासों के प्रति अंधे, बहरे, गूँगे हो जाना और उन पर कोई प्रतिक्रिया नहीं देना है।

समझदार जानते हैं कि व्यावहारिकता के धरातल पर ऐसा हो पाना संभव नहीं है। दरअसल खुशी एक संपूर्ण एहसास है। इसमें नकारात्मक एहसासों की अनुपस्थिति नहीं है, बल्कि खुशी महसूस करने के लिए जीवन में जितना सकारात्मक एहसासों के होने का महत्त्व है, उतना ही नकारात्मक एहसासों के होने का भी है। जरूरत है तो मात्र इन दोनों अनुभूतियों के बीच बेहतर प्रबंधन की, जिसकी कला आ जाने पर जो अनुभूति होगी, उसे खुशी कहा जा सकता है।

मनोवैज्ञानिक शोधों के अनुसार जीवन में सफल होने में, सफलता प्राप्त करने में खुशी एक महत्त्वपूर्ण कारक है, लेकिन आज व्यक्ति सफलता को लेकर काफी दबाव में रहता है; क्योंकि औरों से आगे निकलने की होड़ और अधिक कमाई के लिए जुटे रहना—आज इसी को सफलता का मापदंड बना दिया गया है। प्रसिद्धि से इसे जोड़ दिया गया है, पर प्रश्न यह है कि क्या इससे खुशी मिलती है ? शायद नहीं। हाँ! जीतने का अहंकार जरूर होता है।

अपने प्रयासों के कारण जीत का एहसास स्वाभाविक है, लेकिन जल्द ही हम पहले की तरह जमीन पर होते हैं। सबके साथ, उनकी तरह ही सामान्य होते हैं। जबकि हारने वाले जीतने वाले से कम खुश होते हैं, ऐसा नहीं है। कई बार हार भी खुशी का कारण बनती है; क्योंकि वो आपको एक नई समझ, नई दिशा, नया सबक देती है।

जीत की खुशी क्षणिक हो सकती है, लेकिन समझ की खुशी लंबे समय तक रहती है, उसका प्रभाव लंबे समय तक बना रहता है। इसी प्रकार जरूरत की आवश्यकताएँ पूरी हो जाएँ तो उसके बाद अधिक पैसा या शोहरत आपको खुशी देगा, यह भी जरूरी नहीं। हाँ! आप यदि खुश रहने की कला को जान जाते हैं तो जीवन के हर क्षेत्र में प्राप्त उपलब्धि को और भी सार्थकता मिलती है।

जब व्यक्ति खुश होने का प्रयत्न करता है तो मन में स्वाभाविक ही प्रश्न उठते हैं कि खुश कैसे हों? अपनी खुशी को हम कहाँ केंद्रित करें ? हम किन बातों को लेकर खुश हों, खुशी व्यक्त करें ? ऐसे कुछ बिंदु हैं, जिनसे ऐसा कर पाना संभव है। सबसे पहले यह कि आप अपना खयाल रखें। तन-मन की सेहत का ध्यान रखते हुए समय का सदुपयोग करें। शांत मन से वर्तमान पर टिके रहना सीखें। वर्तमान में बने रहने की यह खूबी आपको अधिक क्षमता से भर देगी, काम में मन लगेगा और आप अधिक उत्पादक बन सकेंगे।

याद रखें कि हम सभी एक जैसे नहीं हैं, हम सभी ईश्वर की बगिया के अपनी ही तरह के फूल हैं, जो दूसरे जैसे हैं ही नहीं। इसलिए अपनी खूबियों को पहचानें और सँवारें। अपने जीवन में उत्कृष्टता को महत्त्व दें। साथ ही अपने श्रम, प्रतिभा, साधन का एक अंश ईश्वर की इस बगिया को और भी सुंदर बनाने में लगाएँ। निश्चित ही तब आप खुशी के रहस्य को समझ जाएँगे और उसका आनंद जीवनपर्यंत लेते रहेंगे। ❑

भगवान बुद्ध श्रावस्ती नगर में ठहरे हुए थे। उनकी सायंकालीन सभा चल रही थी। भगवान बुद्ध सांसारिक कष्टों एवं उनसे मुक्ति के पथ का विवेचन कर रहे थे कि तभी एक महिला वहाँ आई और रोते हुए उनके चरणों पर गिर पड़ी और उनसे निवेदन करने लगी—"प्रभु! मेरा एकमात्र पुत्र था। मृत्यु ने उसे मुझसे छीन लिया है, आप आशीर्वाद देंगे तो उसे जीवन मिल जाएगा। आप कृपया उसे जीवित कर दें, मैं आपके चरणों में उसके प्राणों की भीख माँगती हूँ।"

बुद्ध मुस्कराकर उस महिला से बोले—"माँ! आप चिंता न करें। मैं आपके पुत्र को जीवन अवश्य दूँगा, पर उसके लिए आपको भिक्षा में सरसों के दाने माँगकर लाने होंगे।" महिला भगवान बुद्ध के यह वचन सुनकर आह्लादित हो उठी। तभी थोड़ा रुककर बुद्ध पुनः बोले—"पर ध्यान रहे, दाने उसी घर से माँगकर लाना, जहाँ कभी किसी की मृत्यु न हुई हो।"

महिला बुद्ध के आश्वासन से इतना विभोर थी कि वह बिना उनके कहे का मर्म समझे, भिक्षाटन पर निकल पड़ी। उसने नगर के हर घर का द्वार खटखटा डाला और अनेकों उसकी पुकार पर सरसों के दाने देने को तत्पर भी हो गए, पर ऐसा घर तो किसी का न था, जहाँ मृत्यु ने पग न धरे हों। तब महिला को भान हुआ कि मृत्यु तो सृष्टि का अनिवार्य सत्य है। यहाँ कर्मानुसार गति है। हर प्राणी को निश्चित समय पर शरीर छोड़ना ही पड़ता है।

यह बोध होते ही वह तुरंत वापस लौट पड़ी और भगवान बुद्ध के चरणों में गिरकर बोली—"प्रभु! मुझे जीवन की अमरता का नहीं, जीवनलक्ष्य की प्राप्ति का ज्ञान दें। वही ज्ञान शाश्वत है, शेष सब नश्वर हैं।" भगवान बुद्ध उस महिला से करुणासक्त स्वर में बोले—"पुत्री! मुझे तुम्हारे कष्ट का पूर्ण ज्ञान है, परंतु इससे मुक्ति का मार्ग अमरता पाना नहीं, जीवन को सार्थक बनाना है।"

आतंकवाद का समाधान है अहिंसा और आध्यात्मिकता

आज समग्र विश्व आतंकवाद, उग्रवाद व संघर्ष की दहशत में जी रहा है। इसका मुख्य कारण है प्रतिशोध, घृणा व बदले की भावना और इसकी जड़ें अन्याय तथा शोषण की भावना में हैं। ईंट के जवाब में पत्थर, आग के बदले आग व आँख के बदले आँख इस प्रक्रिया को अंतहीन बना देते हैं और कोई हल प्रदान नहीं करते। परिणाम है बरबादी।

हमारा पड़ोसी देश इसका ज्वलंत उदाहरण है, जो पिछले दशकों से इसी प्रक्रिया में उलझा रहा, जिसके चलते वह देश सर्वांगीण विकास से वंचित रह गया और आज दयनीय आर्थिक स्थिति में पहुँच गया है। सत्य यह है कि अहिंसा व आध्यात्मिकता से ही इस समस्या का समाधान पाया जा सकता है।

आध्यात्मिकता सिखाती है कि मनुष्य अपने कर्त्तव्यों से दूसरों के अधिकारों की रक्षा करे। मानवता ही हमारे जीवन का आधार है। इसका हल है क्षमादान, जो आध्यात्मिकता से ही संभव है; क्योंकि आध्यात्मिकता, क्षमादान के महत्त्व को प्रभावी ढंग से मानव के मन से उतारती है।

महाभारत में युधिष्ठिर ने कहा कि जो व्यक्ति क्षमाशील को दान देता है, वह इस संसार में तथा आने वाले संसार में पूजा जाएगा। हर धर्म का यही सिद्धांत है—त्रुटि सुधार, पछतावा तथा क्षमा। जैन पर्व मिच्छामी दुक्कड़म क्षमादान के सिद्धांत को प्रतिपादित करता है। शास्त्र कहते हैं कि **तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु**—अर्थात मन के संकल्प शुभ और कल्याणमय हों। सर्वस्व का न्यास ही संन्यास है। यज्ञदान व तप मनुष्यों को भी पवित्र करने वाले हैं।

असत् वस्तु का अस्तित्व नहीं है और सत् का कभी अभाव नहीं है। विश्व के समस्त धर्म भाईचारा, सहिष्णुता, सहअस्तित्व, सदाचार और मानवीयता का पाठ पढ़ाते हैं और प्रेय से श्रेय को अग्रसर होने का निर्देश देते हैं। सर्वधर्म समभाव का आधार है मानवता, जिसे सबसे बड़ा धर्म माना गया है।

यह एकत्व के सिद्धांत पर आधारित है अर्थात एक सृष्टि-एक दृष्टि। धर्म (मानवता) एक है, खून का रंग एक है, धरती, आकाश, चंद्रमा, सूर्य, समुद्र, सत्य व परमात्मा सब एक हैं और यही है विश्व एकता व विश्व भ्रातृत्व का आधार।

जगत् के सभी जीव भगवान से ही पैदा हुए हैं, भगवान की ही सत्ता से भगवान में ही जी रहे हैं और अंत में भगवान में ही सबका प्रवेश होता है।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥

सभी मानव ईश्वर की संतान हैं। यही सर्वधर्म का मूल सत्य है, जो एक है।

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते
येन जातानि जीवन्ति।
यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।

विश्व का प्राचीनतम धर्म सनातन धर्म—वसुधैव कुटुम्बकम्, नर ही नारायण है, आत्मवत् सर्वभूतेषु, सर्वधर्म समभाव, सर्वभूत हिते रतः, सत्यं-शिवं-सुंदरम् एवं सीय राममय सब जग जानी के द्वारा विश्व बंधुत्व की भावना जाग्रत करता है। **सर्वे भवंतु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः** की कामना भी विश्व मंगल की कामना है।

पंचशील सिद्धांत भी विश्व बंधुत्व की दिशा में भारत की एक और अहम पहल रही है। घट-घट में ब्रह्मज्योति के दर्शन का पवित्र भाव यह धर्म देता है। गीता में भगवान ने कहा है—"सर्वत्र आत्मा को समभाव से देखने वाला युक्तात्मा देखता है कि समस्त प्राणियों में आत्मा है और समस्त प्राणी आत्मा में हैं।"

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥

धर्म भी मानव कल्याण की ही कामना करता है। बौद्ध धर्म में '**अहिंसा परमो धर्मः**' का संदेश दिया गया है। जैन धर्म ने वीतरागता (निर्लिप्तता) का पाठ पढ़ाया है, जो मानव को अध्यात्म की ऊँचाइयों पर पहुँचाता है। गुरु नानक ने भी एक ओंकार (एक नूर से सब जग उपज्या, कोन भले कोन मंदे) का संदेश दिया है। बहाई धर्म ने भी एक कर दे हृदय

अपने सेवकों के हे प्रभु! जैसा विश्वव्यापी दृष्टिकोण दिया है।

मनुष्य के पास एक ही ऐसी शक्ति है, जो उसे धरती से आसमान तक जोड़ती है। पक्षी मंदिर पर भी बैठते हैं और मसजिद व गिरजाघर पर भी। गणेश जी, महालक्ष्मी जी की पूजा सभी धर्म के लोग करते हैं। यह है धर्म की एकता, जो संसार में और बढ़ने की उम्मीद है। सहमना, समरस, सहजीवन ही समाज गठन का मूल आधार है।

समूचे विश्व का लोक-मंगल चाहना भारतीय संस्कृति की सर्वोच्च दिव्यता है। भावनात्मक एकता से एकात्म राष्ट्र बनता है। समूची सृष्टि के प्रति अद्वैत-दर्शन की सर्वात्मवादी दृष्टिवाली यह विकासमान संस्कृति समग्र दार्शनिक चिंतन से भरपूर है। यजुर्वेद के मंत्र में भी विश्वशांति की विहंगम कामना की गई है।

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳशान्तिः पृथिवी
शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः
शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्ति
शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥

अर्थात अंतरिक्ष हमें शांति प्रदान करे, पृथ्वी हमें शांति प्रदान करे, औषधियाँ, वनस्पतियाँ, पानी व दिव्य शक्तियाँ हमें शांति प्रदान करें, संपूर्ण ब्रह्मांड हमें शांति प्रदान करें और सर्वत्र शांति हो। भूमिसूक्त में कहा गया है—भूमि मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ।

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं
नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।
सहस्रंधारा द्रविणस्य मे
दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती॥

अर्थात अनेक प्रकार से विविध प्रकार की भाषाओं का बोलने वालों, अनेक प्रकार के धर्मों का पालन करने वालों और एक घर में रहने वाले विविध मनुष्यों की तरह हम सबको धारण करती हुई हमारी भूमि स्थिर होकर दुधारू गऊ की तरह हमारे लिए धन की सहस्रों धाराएँ प्रदान करे।

भारतीय सभ्यता की विशालता ईश्वर की सर्वव्यापकता में निहित है, जहाँ मानव, पशु-पक्षी, कंकड़-पत्थर सब में ईश्वर के दर्शन होते हैं। सच्चा धर्म सकारात्मक होता है। विश्वशांति का आधार है—प्रेम। मनुष्य के अंदर व्याप्त विसंगतियों (ईर्ष्या, लोभ, स्वार्थ, क्रोध, भय, परलोलुपता व प्रतिष्ठा के पूर्वाग्रह) को समाप्त कर प्रेम का विकास करने पर ही विश्वशांति स्थापित होगी।

इसके लिए हर आदमी को सोचना होगा कि वह अपने कर्त्तव्यों से दूसरों के अधिकारों की रक्षा करे। मनुष्य जीवन की सार्थकता है—औरों की सुरक्षा व सहायता करने में।

परपीड़ा में छलक उठे मन,
यह छलकन ही गंगाजल है।

एक जिज्ञासु ने ज्ञानी से पूछा—''जीवन को अलंकृत करने वाले देवता कौन से हैं?'' उत्तर मिला—''हृदय और जीभ।''

दूसरा प्रश्न था—''जीवन को नष्ट करने वाले दो दैत्य कौन से हैं?'' उत्तर मिला—''हृदय और जीभ।''

वास्तव में हृदय की निष्ठुरता और सहजता व्यक्ति को पतित और महान बनाती है।

जीभ के असंयम से मनुष्य स्वास्थ्य और सहयोग खो बैठता है।

मधुर और उपयुक्त संभाषण से श्रेय और स्नेह की भरपूर मात्रा हस्तगत होती है।

दुःख हरने को पुलक उठे मन,
यह पुलकन ही तुलसीदल है।
जो अभाव में सुख बाँट सके,
वाणी से रस झर सके,
जनहिताय अर्पित जो जीवन,
यह अर्पण ही आराधन है।

अमेरिकी राष्ट्रपति ओबामा का यह नारा था, जिसे वहाँ के लोगों का पूरा समर्थन मिला। आज इस परिवर्तन की जरूरत विश्व परिप्रेक्ष्य में भी महसूस की जा रही है, ताकि संसार की विसंगति को सुसंगति एवं सामंजस्य में परिवर्तित किया जा सके। सभी कुछ आगे बढ़ रहा है इस

तरक्की के जमाने में, पर कितना आश्चर्य है कि आदमी, इनसान नहीं बनता। इस विषम परिप्रेक्ष्य में जरूरत है सत्य व न्याय पर आधारित विश्व दृष्टिकोण की, जो आध्यात्मिक जाग्रति से ही संभव है।

जरूरत है एक नई विश्वव्यवस्था की, जो विश्व प्रेम, विश्व बंधुत्व व विश्व एकता पर आधारित हो। यह आध्यात्मिक जाग्रति से ही संभव है। अध्यात्म सर्वजनों को सर्वसुलभ मार्ग प्रदान करता है। हम विचारों की शुचिता व आचरण की पवित्रता की ज्योति जलाएँ। मानवता को सर्वोपरि धर्म बनाएँ, यही राष्ट्रधर्म है। परम प्रकाश, एक नूतन शुरुआत, एक नवीन पक्ष व नवरस का संचार करें। यह विश्व शांति स्थापित करने में एक सार्थक पहल होगी। ❑

मगध के राजा सर्वदमन को राजगुरु की नियुक्ति अपेक्षित थी। वह स्थान बहुत समय से रिक्त पड़ा था। एक दिन महापंडित दीर्घलोभ उधर से निकले। राजा से भेंट-अभिवादन के उपरांत महापंडित ने कहा—"राजगुरु का स्थान आपने रिक्त छोड़ा हुआ है। उचित समझें तो उस स्थान पर मुझे नियुक्त कर दें।"

राजा यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। साथ ही एक निवेदन भी किया कि आपने जो ग्रंथ पढ़े हैं, कृपया एक बार सबको फिर पढ़ लें। इतना कष्ट करने के उपरांत आपकी नियुक्ति होगी। जब तक आप आएँगे नहीं, वह स्थान रिक्त ही पड़ा रहेगा।

महापंडित वापस अपनी कुटी में चले गए और सब ग्रंथ ध्यानपूर्वक पढ़ने लगे। जब पढ़ लिए तो फिर नियुक्ति का आवेदन लेकर राजदरबार में उपस्थित हुए। राजा ने अबकी बार फिर और भी अधिक नम्रतापूर्वक एक बार फिर उन ग्रंथों को पढ़ लेने के लिए कहा। दीर्घलोभ असमंजसपूर्वक फिर पढ़ने के लिए चल दिए। नियत अवधि बीत गई, पर पंडित वापस न लौटे। तब राजा स्वयं पहुँचे और न आने का कारण जानने लगे।

पंडित ने कहा—"गुरु अंतरात्मा में रहता है। बाहर के गुरु कामचलाऊ भर होते हैं। आप अपने अंदर के गुरु से परामर्श लिया करें।" राजा ने नम्रतापूर्वक पंडित जी को साथ ले लिया और उन्हें राजगुरु के स्थान पर नियुक्त किया व बोले—"अब आपने शास्त्रों का सार जान लिया, इसलिए आप उस स्थान को सुशोभित करें।" जब उत्कृष्टता व्यक्ति के व्यवहार में उतरने लगती है तो धर्मनिष्ठा स्वतः प्रकट हो जाती है।

गांधी जी की प्रासंगिकता

वर्तमान परिवेश में गांधी जी का चिंतन कितना प्रासंगिक है, ईमानदारी से इसे खोजने की आवश्यकता है। गांधी जी युगद्रष्टा थे। उन्होंने भारत की तत्कालीन विकट स्थिति का बड़ी सूक्ष्मता से अध्ययन किया और उसके निराकरण के लिए देश में तब की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अपनी कार्यनीति की रूपरेखा तैयार की।

लोकसंग्रह के बल पर राष्ट्र की सनातन संस्कृति, समरसता और सामाजिक न्याय को अक्षुण्ण रखते हुए गांधी जी ने परतंत्र देश को स्वाधीनता दिलाने के यज्ञ में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। संभवत: गांधी जी ही एकमात्र ऐसे नेता थे, जिन्होंने अँगरेजों की 'बाँटो और राज करो' की नीति को न केवल अच्छे से समझा, अपितु उसका सफलतापूर्वक प्रतिकार भी किया।

सन् 1857 की क्रांति को कुचलने के बाद अँगरेज स्वाभाविक रूप से उस तरह के आंदोलन की पुनरावृत्ति नहीं चाहते थे। एक नीतिगत निर्णय के अंतर्गत अँगरेजों ने भारत में अलग-अलग सामाजिक इकाइयों की निर्बल कड़ियों को ढूँढ़ा और योजनाबद्ध तरीके से उन्हें और ज्यादा कमजोर करने का काम प्रारंभ किया। इस षड्यंत्र में सवर्ण-दलित, हिंदू-मुसलिम, हिंदू-सिख, उत्तर-दक्षिण भारत (आर्य-द्रविड़) और राज-रजवाड़े-प्रजा जैसे बिंदु शामिल थे।

सदियों से भारतीय समाज अस्पृश्यता और जातिभेद से अभिशप्त रहा है। इसी अविश्वास की खाई को और अधिक चौड़ा करने के लिए अँगरेजों ने कई षड्यंत्र किए, जिनमें सन् 1930-32 में दलितों के लिए अलग से निर्वाचक मंडल बनाने का प्रस्ताव भी शामिल था। इस प्रस्ताव के अनुसार, दलितों को दोहरे मतदान की अनुमति थी और वे अपने प्रत्याशी के साथ ही सामान्य उम्मीदवार के लिए भी चुनाव में शामिल हो सकते थे।

16 अगस्त, 1932 को तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमंत्री जेम्स मैकडॉनल्ड ने दलितों के अतिरिक्त मुसलिम, ईसाई, एंग्लो भारतीय और सिखों के लिए भी अलग निर्वाचक मंडल बनाने की पैरवी की थी। गांधी जी अँगरेजों की कुत्सित चालों को समझ चुके थे। उन्होंने दलितों के पृथक निर्वाचक मंडल का कड़ा विरोध करते हुए 20 सितंबर, 1932 को यरवडा जेल (पुणे) में ही आमरण अनशन शुरू कर दिया।

जब गांधी जी की सेहत बिगड़ने लगी, तब पंडित मदनमोहन मालवीय जी के प्रयासों से गांधी जी और डॉ. आंबेडकर के बीच समझौता हुआ, जिसे 'पूना पैक्ट' के नाम से जाना जाता है। दलितों के लिए अलग निर्वाचक मंडल के स्थान पर संयुक्त निर्वाचन के सिद्धांत को स्वीकार किया गया। साथ ही दलितों के लिए विधानमंडलों में सुरक्षित स्थानों को 71 से बढ़ाकर 148 कर दिया गया।

भारतीय समाज को बाँटने के लिए अँगरेजों को सबसे उपयुक्त और आसान हिंदू-मुसलिम के मध्य तनाव पैदा करना लगा। उन्होंने दोनों को एकदूसरे के खिलाफ खड़ा किया; क्योंकि दोनों समुदायों के बीच 800 वर्ष से अधिक का अविश्वास भाव था। हिंदू-मुसलिमों को जोड़ने के लिए गांधी जी ने तुष्टीकरण का सहारा लिया और वर्ष 1919-24 में मुसलिमों के मजहबी 'खिलाफत आंदोलन' का न केवल समर्थन किया, बल्कि उसकी अगुआई भी की, किंतु मुसलिम अलगाववादी ज्वार के समक्ष गांधी जी का उनमें विश्वास बौना साबित हुआ।

परिणामस्वरूप अँगरेजों की कुटिलता और वामपंथियों के वैचारिक समर्थन ने उस पाकिस्तान को वैश्विक मानचित्र पर उभारा, जो आज दुनिया के लिए कैंसर बन चुका है। गांधी जी, जिन्होंने यह घोषणा की थी कि पाकिस्तान का निर्माण उनकी मृत देह पर होगा—वे इस बात से काफी आहत हुए थे।

15 अगस्त, 1947 को दिल्ली में हो रहे समारोह में शामिल न होकर गांधी जी नोआखाली में प्रताड़ित हिंदू महिलाओं को मुसलिम दंगाइयों से बचाने का काम कर रहे थे। अँगरेजों की विभाजनकारी नीतियों के शिकार हिंदू-

सिख संबंध भी हुए। उन्होंने कई ऐसे निर्णय लिए, जिनसे उनके संबंधों में दरार पड़ी; जबकि उनके संबंध अत्यंत प्रगाढ़ रहे हैं।

आइसीएस अधिकारी मैक्स ऑर्थर मैकालिफ के कहने पर भाई काहन सिंह नाभा ने सन् 1898 में एक प्रकाशन निकाला, जिसका शीर्षक था—'हम हिंदू नहीं हैं, परंतु बापू के सतत प्रयासों के कारण हिंदू-सिख एकता बनी रही और अँगरेज अपने इस षड्यंत्र में बहुत अधिक सफल नहीं हो सके।

द्रविड़ संस्कृति के नाम पर अँगरेजों ने दक्षिण भारत में हिंदू-हिंदी और उत्तर भारतीयों के विरोध का कुत्सित प्रयास किया था। तब दक्षिण में हिंदी को लोकप्रिय बनाने के लिए गांधी जी ने आंदोलन चलाया था। उनके व्यक्तित्व और लोकप्रियता के कारण दक्षिण भारत भी स्वतंत्रता आंदोलन में साथ हो गया।

गांधी जी जब देश के बड़े नेता के रूप में स्थापित हुए, तब एक दिन वे अपने गृहनगर राजकोट पहुँचे, जहाँ स्थानीय महाराजा के विरुद्ध जन आंदोलन चल रहा था। आंदोलन के नेताओं ने गांधी जी से इस अभियान का नेतृत्व करने का अनुरोध किया, किंतु बापू ने इसके प्रति कोई उत्साह नहीं दिखाया। इस पर आंदोलनकारियों ने गांधी जी से पूछा—''आपने अँगरेजों के छक्के छुड़ा दिए तो एक राजा से टक्कर लेने से क्यों कतरा रहे हैं?'' तब गांधी जी का उत्तर था—''अँगरेज विदेशी हैं और राजा मेरे अपने, यदि मुझे कोई समस्या होगी तो मैं उनके समक्ष अपनी बात रखूँगा।''

गांधी जी की पंथनिरपेक्षता धर्मनिरपेक्ष नहीं थी। उनका सनातन धर्म में अडिग विश्वास था। वे वैदिक संस्कृति के सूत्र—'**एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति**' के दर्शन से प्रेरणा पाते थे। गांधी जी का 'सत्याग्रह' आंदोलन भी हिंदू चिंतन के '**सत्यमेव जयते**' से प्रेरित रहा। उसी सत्य को उन्होंने भगवान श्रीराम में देखा और उनके वनवास को धर्मपालन माना, इस कारण उन्होंने रामराज्य की परिकल्पना की। गांधी जी जीवनभर लालच, धोखे और भय के कारण होने वाले मतांतरण के विरोध में चर्च के खिलाफ लड़ते रहे। गोरक्षा का विषय गांधी जी के लिए स्वराज से अधिक प्रिय था। वे कहते थे—''स्वराज की प्राप्ति गोरक्षा के बिना संभव नहीं।''

गांधी जी ने स्वावलंबन और स्वदेशी के प्रयोग पर भी बल दिया। आज केवल कुछ ही संगठन स्वदेशी की अवधारणा का प्रचार करते हैं। क्या यह विडंबना नहीं कि गांधी जी की विरासत को हमने बिसार दिया है? आवश्यकता है कि उनके सिद्धांतों का अनुपालन किया जाए; क्योंकि गांधी आज पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक हैं। ❑

ब्राह्मणपुत्र ब्रह्मचर्याश्रम की अवधि पूर्ण करके घर लौटा। आँगन में आकर माता के चरणस्पर्श किए और पूछा—''पिताजी कहाँ हैं?'' माता ने कहा—''वे अंदर हैं।'' पुत्र अंदर गया, पर पिताजी वहाँ नहीं थे और पीछे का दरवाजा खुला हुआ था, जैसे वे वहाँ से कहीं चले गए हों। पूरा वर्ष बीतने पर उसके पिता घर लौटे। पुत्र ने पूछा—''पिताजी! आप हमें छोड़कर इतने दिनों कहाँ चले गए थे?'' पिता ने कहा—''पुत्र! जब तुम अपनी शिक्षा-दीक्षा पूर्ण करके घर आए थे तो मैंने तपस्या से जगमगाते हुए तुम्हारे ललाट को देखा। उस समय मुझे ऐसा लगा कि मैं तुम्हारा प्रणाम स्वीकार करने योग्य नहीं हूँ। अतएव तपस्या करने हेतु वन चला गया। एक तपस्वी का प्रणाम ग्रहण करने योग्य पात्रता अर्जित करने के पश्चात लौट आया। अब तुम सहर्ष मेरे चरण छूकर आशीर्वाद ले सकते हो।'' वस्तुतः प्रणाम लेने का अधिकार उसे है, जो प्रणाम करने वाले से अधिक योग्य हो।

निष्काम कर्म से तोड़ें कर्मबंधन की डोर

संसार में सुखी प्राणी भी हैं और दु:खी भी। सामान्यतया यह देखा जाता है कि सुख पाने के अनेक प्रयत्न करने पर भी कोई मनुष्य सुखी नहीं हो पाता, पर कभी-कभी बिना विशेष प्रयत्न किए भी मनुष्य को सुख प्राप्त हो जाता है। कोई व्यक्ति बिना परिश्रम और पुरुषार्थ किए ही सुख और समृद्धि में जीता है, तो कोई व्यक्ति जीवन में घोर परिश्रम और पुरुषार्थ करते हुए भी दु:ख व अभाव में जीवन जीता है।

कोई व्यक्ति अनीति, अत्याचार, झूठ, पाखंड, बेईमानी, हिंसा आदि बुरे कर्म करते हुए भी धन-धान्य से पूर्ण दिखता है, तो कोई व्यक्ति दूसरों की सेवा, सहायता, दान, परोपकार, पूजा-पाठ आदि अच्छे कर्म करते हुए भी दु:खी रहता है। वह अशांति, असंतोष और अभावों से भरा हुआ जीवन जीता है।

किसी का जीवन खुशियों से भरा होता है, तो किसी का जीवन सिसकियों से भरा होता है। किसी का दामन फूलों से भरा होता है, तो किसी का दामन काँटों से भरा होता है। कुछ लोग जन्म से ही अपंग, अस्वस्थ और रोगी होते हैं तो कुछ लोग स्वस्थ व सुखी होते हैं। कुछ लोग जन्म से ही सोने के पालने में किलकारियाँ मारते हैं, तो कुछ लोग जन्म से ही सिसकियाँ व आहें भरते पाए जाते हैं।

संसार में भला इतनी विषमताएँ क्यों और कैसे हैं? ऐसा होता ही क्यों है? ये प्रश्न सहज ही हमारे मन-मस्तिष्क में उभर आते हैं। जनसामान्य को इसमें कोई तर्क या औचित्य दिखाई नहीं पड़ता; जबकि सत्य यह है कि आम के बीज बोने पर आम के ही वृक्ष होते हैं और आम के ही फल प्राप्त होते हैं। उसी प्रकार बबूल के बीज बोने पर बबूल ही पैदा होता है, काँटे ही पैदा होते हैं।

यदि यह सिद्धांत सही है तो फिर अच्छा कर्म करने पर भी मनुष्य को दु:ख क्यों मिलता है? और बुरे कर्म में रत रहने वाले लोग सुखी और समृद्ध क्यों होते हैं? ये परस्पर विरोधी बातें क्यों और कैसे संभव हो पाती हैं?

ये सारे घटनाक्रम महज संयोग तो नहीं हो सकते हैं। महर्षि अरविंद के अनुसार इस संपूर्ण ब्रह्मांड में मात्र संयोगवश कोई घटना नहीं घटती, बल्कि हर घटना के पीछे कोई ठोस कारण अवश्य होता है।

मनुष्य को सुख और दु:ख मिलना भी महज कोई संयोग नहीं हो सकता। मनुष्य को सुख और दु:ख मिलने के पीछे अवश्य ही कोई ठोस कारण होता है, जो हमें प्रत्यक्ष तो दिखाई नहीं पड़ता, पर होता अवश्य है। प्रस्तुत गीत की पंक्तियों में भी कुछ ऐसे ही भाव गुंजरित हो रहे हैं—

एक झोली में फूल पड़े हैं,
एक झोली में काँटे रे,
कोई कारण होगा, हाँ रे कोई कारण होगा...
तेरे बस में कुछ भी नहीं,
ये तो बाँटने वाला बाँटे रे,
कोई कारण होगा, हाँ रे कोई कारण होगा...
पहले बनती हैं तकदीरें,
फिर बनते हैं शरीर,
यह तो साँई की कारीगरी,
भला तू क्यों है गंभीर,
कोई कारण होगा, हाँ रे कोई कारण होगा...
नाग भी डस ले किसी को,
मिल जाए जीवनदान,
चींटी से भी मिट सकता है,
किसी का नामोनिशान,
कोई कारण होगा, हाँ रे कोई कारण होगा...
धन से बिस्तर मिल जाए,
पर नींद को तरसें नैन,
काँटों पर भी सोकर आए,
किसी के मन को चैन,
कोई कारण होगा, हाँ रे कोई कारण होगा...
कभी मिलें मिट्टी से मोती,
कभी पत्थर से भगवान,

कोई कारण होगा, हाँ रे कोई कारण होगा...
एक झोली में फूल पड़े हैं,
एक झोली में काँटे रे,
कोई कारण होगा, हाँ रे कोई कारण होगा...

पर वह कारण आखिर है क्या? उस कारण को स्पष्ट करते हुए मानसकार लिखते हैं—

काहु न कोउ सुख दु:ख कर दाता।
निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥

अर्थात कोई किसी को सुख-दु:ख को देने वाला नहीं है। सब अपने ही किए हुए कर्मों का फल भोगते हैं।

हर क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। कर्म स्थूलरूप में किए गए हों या सूक्ष्मरूप में उनको प्रतिक्रिया होती अवश्य है। न्यूटन के गति के तीसरे नियम के अनुसार हर क्रिया की विपरीत दिशा में और समान प्रतिक्रिया होती है। उदाहरणस्वरूप किसी गेंद को दीवार पर फेंकने पर वह टकराकर पुन: विपरीत दिशा में लौट आता है। कर्मफल सिद्धांत के अनुसार भी हमारे द्वारा किए गए हर कर्म की प्रतिक्रिया होती है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि बुरे कर्म का परिणाम हर हाल में बुरा ही होता है और अच्छे कर्म का परिणाम हर हाल में अच्छा ही होता है। यह सिद्धांत अक्षरश: सत्य है, पर देखने को मिलता है कि वर्तमान में ईमानदारी, सच्चाई, दान, परोपकार, सेवा, पूजा-पाठ, पुरुषार्थ, अच्छे कर्म, शुभ कर्म, पुण्यकर्म करते हुए भी कुछ लोग दु:ख, संकट और अभाव में जीते रहते हैं।

इसका कारण उनके द्वारा वर्तमान में किए जा रहे उनके अच्छे, शुभ व पुण्यकर्म नहीं हैं, बल्कि अतीत में या पूर्वजन्म में उनके द्वारा किए गए अशुभ, बुरे या पापकर्म ही हैं, जो प्रारब्ध बनकर उनके वर्तमान जीवन में अब प्रकट हो रहे हैं और वर्तमान में उनके द्वारा किए जा रहे जो पुण्य कर्म हैं, शुभ कर्म हैं, अच्छे कर्म हैं—उनके भी मधुर फल उनके भविष्य में या अगले जन्म में उन्हें अवश्य ही प्राप्त होंगे।

उसी प्रकार वर्तमान में बुरे कर्म, पापकर्म, अशुभ कर्म करते हुए भी जो सुखी और समृद्ध दीख रहे हैं—इसका कारण भी उनके वर्तमान अशुभ, पाप या बुरे कर्म नहीं हैं, बल्कि अतीत में या पूर्वजन्म में उनके द्वारा किए गए शुभ, पुण्य और अच्छे कर्म हैं। उनके द्वारा अतीत या पूर्वजन्म में किए गए शुभ, पुण्य व अच्छे कर्म अब परिपक्व होकर प्रारब्ध बनकर उनके वर्तमान जीवन में प्रकट हो रहे हैं।

इसलिए बुरे कर्मों में रत रहने पर भी वे सुखी-समृद्ध दिखाई पड़ रहे हैं, पर जैसे ही उनके अतीत या पिछले जन्मों में किए गए शुभ कर्मों से प्राप्त पुण्य समाप्त हो जाएँगे, वैसे ही उन्हें उनके द्वारा वर्तमान में किए जा रहे बुरे कर्मों का दु:खद परिणाम मिलना प्रारंभ हो जाएगा। जब तक व्यक्ति के खाते में शुभ कर्म शेष हैं, तब तक बुरे कर्म करते हुए भी वह सुखी रहता है, पर पुण्य समाप्त होते ही उसे बुरे कर्मों के बुरे परिणाम मिलने प्रारंभ हो जाते हैं।

प्रकृति भी वर्तमान में बुरे कर्मों में रत बुरे व्यक्ति को उसके द्वारा अतीत या पूर्वजन्मों में किए गए पुण्यकर्मों का सुखभोग पहले ही करा देना चाहती है, जिससे कि उसके बुरे कर्मों के परिणामस्वरूप उसे दु:ख मिलने प्रारंभ होने पर उसके दु:ख पाने में उसके पुण्य बाधा न बन सकें।

उसी प्रकार वर्तमान में जो पुण्यकर्म में रत है, प्रकृति पहले उसके खाते में जमा उसके अतीत के पापों को उसे दु:ख देकर समाप्त कर देना चाहती है, जिससे कि जब उसे वर्तमान में किए गए पुण्यकर्मों का सुखभोग भविष्य में या अगले जन्म में मिलना प्रारंभ हो तो उसके अतीत के पाप उसके सुखभोग मिलने में कोई बाधा न बन सकें।

कोई बैंक किसी बुरे व्यक्ति को पैसा देने से इसलिए इनकार नहीं कर सकता है कि वह बुरा या पापी व्यक्ति है। यदि उसके खाते में पैसे जमा हैं तो बैंक को उन्हें उसे देना ही होगा। प्रकृति भी ऐसा ही करती है। यदि वर्तमान में व्यक्ति बुरे कर्मों में रत है तो भी उसके अतीत के कर्मखाते में जमा पुण्य के परिणामस्वरूप वह उसे सुखभोग प्रदान करने से इनकार नहीं कर सकती।

हम वर्तमान समय में जो भी अच्छे-बुरे कर्म कर रहे हैं, वे क्रियमाण कर्म हैं। यह क्रियमाण कर्म भविष्य में सुख और दु:ख के रूप में प्रकट होने के लिए संचित होते रहते हैं। तब इन्हें संचित कर्म कहते हैं। जब संचित कर्म परिपक्व होकर व्यक्ति के जीवन में सुख-दु:ख के रूप में प्रकट होते हैं, तब इन्हें ही प्रारब्ध कर्म कहते हैं।

अस्तु हमारा वर्तमान कर्म, क्रियमाण कर्म बीज है, संचित कर्म उस बीज से तैयार हुआ वृक्ष है और प्रारब्ध कर्म उस वृक्ष में लगे हुए सुख और दु:ख के फल हैं, जो हमें एक-न-एक दिन भोगने ही पड़ते हैं।

अत: मनुष्य के जीवन में सुख का कारण सिर्फ और सिर्फ शुभ कर्म, पुण्यकर्म और अच्छे कर्म ही होते हैं और दु:ख का कारण सिर्फ और सिर्फ पाप या बुरे कर्म ही होते हैं। कोई जन्म से ही अपंग, अस्वस्थ, कष्ट में है और कोई जन्म से ही स्वस्थ, सुखी है तो इसका कारण उसके द्वारा पूर्वजन्म में किए गए कर्मों में ही छिपा है। कोई जन्म से ही सोने के पालने में है तो कोई जन्म से ही घोर दु:ख व संकट में है।

इसका कारण भी उसके पूर्वजन्म के कर्मों में ही छिपा है, जो वर्तमान में नहीं दीख पड़ता है। जो बच्चा अभी जन्मा ही है और जिसने कोई बुरे कर्म ही नहीं किए, फिर भी वह अपंग, अस्वस्थ व दु:ख में है; उसी प्रकार कोई बच्चा जो अभी-अभी जन्मा है, उसने कोई शुभ कर्म या पुण्यकर्म अभी किए ही नहीं और न तो वह अभी ऐसे कर्म करने की अवस्था में है, फिर भी वह सुख में क्यों है?

दरअसल कोई भी प्राणी केवल वर्तमान में दीखने वाला स्थूलशरीर ही नहीं है। वास्तविक प्राणी तो उसकी आत्मा है। उस आत्मा का अस्तित्व अनादि काल से है और अनंत काल तक रहेगा। जिस प्रकार हम पुराने वस्त्र उतारकर नए वस्त्र धारण कर लेते हैं, उसी प्रकार जीवात्मा पुराने शरीर त्यागकर अपने कर्मों के अनुसार नए-नए शरीर धारण करती रहती है, पर उस नए शरीर में भी जीवात्मा अपने पूर्वजन्मों के अच्छे-बुरे कर्मों के कर्मसंस्कार अपने साथ लाती है और इसी कारण वह अपने कर्मों के अनुसार सुख व दु:ख को भोगती है।

हम वर्तमान में सुख या दु:ख जिस किसी भी स्थिति में हैं, वह हमारे ही अतीत के कर्मों का परिणाम है और भविष्य में हम सुख या दु:ख जिस किसी भी स्थिति में होंगे वह हमारे द्वारा वर्तमान में किए जा रहे अच्छे या बुरे कर्मों का ही परिणाम होगा।

यह आवश्यक नहीं है कि इस जन्म में हम जो भी अच्छे या बुरे कर्म कर रहे हैं, उनका फल हमको अभी या इसी जन्म में मिल जाए। वह फल हमको वर्तमान जीवन में भी मिल सकता है और अगले जन्मों में भी। यह कर्मचक्र जन्म-जन्मांतरों तक इसी प्रकार चलता रहेगा, जब तक कि हम अपने पुरुषार्थ से अपने समस्त कर्मों को नष्ट नहीं कर देते।

यह पुनर्जन्म का सिद्धांत है। यही जीवात्मा के जन्म-मरण का कारण है। यही जीवात्मा के जन्म-मरणरूपी बंधन का कारण है। अस्तु कर्मबंधन ही जीवात्मा की मुक्ति में बाधक है। जब तक जीवात्मा के साथ अच्छे-बुरे कर्मों का बंधन लगा हुआ है, तब तक यह जीव इस संसार में जन्म-मरण करता हुआ सुख व दु:ख भोगता रहेगा।

यहाँ यह समझना अत्यावश्यक है कि जीवात्मा के लिए कर्मसंस्कार एक बंधन है। यदि बुरे कर्मों का संस्कार एक बंधन है तो अच्छे कर्मों का संस्कार भी बंधन ही है। वैसे ही, जैसे लोहे की जंजीर भी एक बंधन है; उसी प्रकार सोने की जंजीर भी एक बंधन ही है। तब क्या हम कर्म करना छोड़ दें? जब अच्छे कर्म भी बंधन हैं तो हम अच्छे कर्म फिर क्यों करें? नहीं, बिलकुल नहीं।

जो प्राप्त है, उसमें प्रसन्नता अनुभव करते हुए अधिक के लिए प्रयत्नशील रहना बुद्धिमानी की बात है, पर यह परले सिरे की मूर्खता है कि अपनी कल्पना के अनुरूप सब कुछ न मिल पाने पर मनुष्य खिन्न और असंतुष्ट ही बना रहे। सबकी सब इच्छाएँ कभी पूरी नहीं हो सकतीं। अधूरे में ही जो संतोष कर लेता है, उसी को इस संसार में प्रसन्नता उपलब्ध हो सकती है।

— परमपूज्य गुरुदेव

कर्म तो हर जीव को करना ही होता है। गीताकार के अनुसार कर्म किए बगैर तो मनुष्य एक पल भी नहीं रह सकता। तो फिर क्या करें और कैसे करें? हम निस्संदेह अच्छे कर्म, पुण्यकर्म, शुभ कर्म करें, जिससे हमें पुण्य प्राप्त हो और उस पुण्य से हमें सुख, शांति व समृद्धि प्राप्त हो सके। हम बुरे कर्म करने से बचें, जिससे कि बुरे कर्मों से जनित पाप से हमें जीवन में दु:ख प्राप्त न हो, पर महत्त्वपूर्ण यह है कि हम शुभ कर्म, पुण्यकर्म या अच्छे कर्म भी फलासक्ति एवं कर्त्तापन की भावना से मुक्त होकर करें।

अच्छे कर्मों से प्राप्त होने वाले मधुर फल के प्रति हम अनुरक्त न हों, आसक्त न हों। क्योंकि अच्छे फल प्राप्त होने की आशा, आसक्ति भी एक बंधन ही है। और यह बंधन भी दु:ख का कारण है। यह बंधन ही जीवात्मा की मुक्ति में बाधक है।

जैसे लोहे की जंजीर में बँधा व्यक्ति दु:खी रहेगा, वैसे ही सोने की जंजीर में बँधा व्यक्ति भी दु:खी ही रहेगा; क्योंकि आखिरकार वह है तो बंधन में ही। भले ही वह बंधन सोने का है। भले ही वह जंजीर सोने की है। सोने की जंजीर में बँधा व्यक्ति भी उतना ही बंधन में है, जितना कि लोहे की जंजीर में बँधा व्यक्ति। लोहे के पिंजड़े में बंद पक्षी भी उतना ही दु:ख या बंधन में है, जितना कि सोने के पिंजड़े में बंद या बँधा हुआ पक्षी; क्योंकि जब तक वह पिंजड़े में है, बंधन में है, तब तक वह उन्मुक्त गगन में विहार नहीं कर सकता, सैर नहीं कर सकता, उड़ान नहीं भर सकता और आनंदित नहीं हो सकता।

उसी प्रकार जीवात्मा शुभ कर्मों के बंधन में बँधा हो या अशुभ कर्मों के बंधन में—दोनों ही स्थिति में वह उन्मुक्त नहीं हो सकता, आनंदित नहीं हो सकता; क्योंकि आनंद तो मुक्ति में ही है। बंधन से मुक्ति में ही है। इसीलिए तो योगियों के कर्म बंधन रहित होते हैं।

योगियों के कर्म, सुख-दु:ख, पाप-पुण्य से सर्वथा परे होते हैं। ऋषिवर पतंजलि योगसूत्र 4.7 में कहते हैं— **कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्।** अर्थात योगी के कर्म अशुक्ल और अकृष्ण होते हैं तथा दूसरों के तीन प्रकार के होते हैं यानी शुक्ल कर्म, कृष्ण कर्म और शुक्ल-कृष्णमिश्रित कर्म होते हैं। पुण्यकर्मों को शुक्ल कर्म कहते हैं एवं पापकर्मों को कृष्ण कर्म कहते हैं।

इस तरह कर्म चार प्रकार के होते हैं—(1) शुक्ल कर्म अर्थात पुण्यकर्म (2) कृष्ण कर्म अर्थात पापकर्म, (3) शुक्लकृष्ण अर्थात पुण्य और पाप मिले हुए कर्म, पुण्य-पाप मिश्रित कर्म और (4) अशुक्लाकृष्ण कर्म (पुण्य-पाप से रहित कर्म।)

सामान्य जन तो प्रथम तीन प्रकार के अर्थात शुक्ल कर्म (पुण्यकर्म), कृष्ण कर्म (पापकर्म) और शुक्ल-कृष्ण अर्थात पुण्य और पाप मिले हुए कर्म करते हैं और फलस्वरूप वे उन कर्मों के अनुरूप ही फल प्राप्त करते हैं। पर योगियों के कर्म इन तीन प्रकार के (पुण्यकर्म, पापकर्म, पुण्य-पापमिश्रित कर्म) कर्मों से भिन्न होते हैं, जिन्हें अशुक्ल और अकृष्ण कर्म कहते हैं अर्थात जो कर्म पुण्य और पाप से परे हैं, मुक्त हैं, रहित हैं।

चूँकि योगी कोई भी कर्म फलासक्ति, आसक्ति एवं कर्त्तापन की भावना से मुक्त होकर करते हैं, इसलिए उनके कर्म पाप-पुण्य से परे होते हैं। इसलिए उनके द्वारा किए गए कर्मों का कोई कर्मसंस्कार नहीं बनता। इसलिए उनके कोई भी कर्म उनके लिए बंधन नहीं बनते।

वे पापकर्म तो कर ही नहीं सकते और पुण्यकर्म भी वे किसी फल की प्राप्ति की आशा, आकांक्षा, आसक्ति से नहीं करते। इसलिए उनके सभी कर्म निष्काम होते हैं, संस्कारशून्य होते हैं और बंधनरहित होते हैं। और इसलिए वे सदा मुक्त, उन्मुक्त और आनंदित रहते हैं। वे सदा अपनी आत्मा में परमात्मा की अनुभूति करते हुए परम आनंदित होते हैं।

अस्तु यदि हमें भी मुक्त होना है, उन्मुक्त होना है, अपने निज सत्-चित्-आनंदस्वरूप में स्थित होना है, हर पल आह्लादित और आनंदित होना है तो हमारे कर्म भी निष्काम होने चाहिए, पाप-पुण्य के बंधन से परे अशुक्ल और अकृष्ण (अशुक्लाकृष्ण) होने चाहिए।

हम निष्काम कर्म करते रहें। हम अपने हर शुभ, पुण्य व अच्छे कर्म को ईश्वर को अर्पित करते चलें। हम कर्त्तापन की भावना से नहीं, बल्कि स्वयं को ईश्वर के हाथों एक उपकरण मात्र मानकर कर्म करते रहें। इससे हमारे हर कर्म अकर्म होते जाएँगे। हमारे हर कर्म निष्काम होते जाएँगे। हर कर्म ईश्वर को अर्पित होते चले जाएँगे। पूर्व के कर्मसंस्कार मिटते जाएँगे, कर्मबंधन टूटते जाएँगे।

स्वयं को ईश्वर के हाथों का एक उपकरण मात्र मानकर कर्म करते रहने से कर्म के अनुकूल या प्रतिकूल परिणाम हमें प्रभावित नहीं कर सकेंगे। हम हर स्थिति में समत्व की स्थिति में रह सकेंगे। हम सुख-दु:ख, हर्ष-विषाद, मान-अपमान से परे होकर ऐंद्रिक सुखों के प्रति अनासक्त होकर, मुक्त होकर, परे होकर हर पल अतींद्रिय आनंद, आत्मिक आनंद प्राप्त कर सकेंगे।

जीव को संसार में जन्म-मरण कराने व सुख-दु:ख देने के कारण जो कर्म होते हैं, उनका ही जब अभाव हो जाता है तब व्यक्ति, साधक जीवनमुक्त अवस्था को प्राप्त कर लेता है। वह देह में होते हुए भी विदेह अवस्था में होता

है। अर्थात देह की आसक्ति से मुक्त आत्मिक अवस्था में होता है। फिर जब वह जीवात्मा, वह साधक मुक्ति की अवस्था में शरीर का त्याग करता है, तब जीवात्मा का पुनर्जन्म नहीं होता।

मुक्ति की अवस्था में भौतिक शरीर में रहते हुए भी— उसे किसी प्रकार का भौतिक सुख, ऐंद्रिक सुख प्राप्त करने की इच्छा नहीं रह जाती है। क्योंकि मुक्ति की अवस्था में वह हर पल एक अनुपम, अतींद्रिय, अलौकिक सुख, शाश्वत सुख, परम सुख, परमानंद की अवस्था में होता है।

अस्तु यदि हमें बंधनमुक्त होना है और आनंद पाना है तो हम क्यों न तोड़ें निष्काम कर्म से कर्मबंधन की कारा। निष्काम कर्म अर्थात कर्मयोग के नित्य अभ्यास से बंधनमुक्त होने का यह मार्ग हर व्यक्ति के लिए खुला हुआ है। नित्य ध्यान के प्रभाव से बड़े-से-बड़े प्रारब्ध को भी मिटाया जा सकता है और बंधनमुक्त हुआ जा सकता है। युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी के अनुसार अपने जीवन में नित्य ज्ञान, कर्म, भक्ति, जप, तप, ध्यान, सेवा, संयम, स्वाध्याय, उपासना, साधना, आराधना आदि योग-साधनाओं के द्वारा कोई भी व्यक्ति कर्मबंधन मे मुक्त होकर मुक्ति प्राप्त कर परम आनंद की अवस्था को प्राप्त कर सकता है।

❑

इंग्लैंड के पास समुद्र में एक प्रकाशस्तंभ था। उस प्रकाशस्तंभ का कर्मचारी किसी काम से इंग्लैंड गया था। संयोग की बात, उस रात समुद्र में बड़ा भयंकर तूफान आया। प्रकाशस्तंभ में उस कर्मचारी की पत्नी और उसकी चौदहवर्षीय पुत्री ग्रेस थी।

अचानक रात को बहुत तेज धमाका हुआ। ग्रेस व उसकी माता समझ गईं कि कोई जहाज प्रकाशस्तंभ से टकराकर टूट गया है, परंतु रात में तूफान के समय में जहाज के लोगों को बचाने का कोई उपाय उन्हें समझ में नहीं आया।

सुबह होते ही ग्रेस प्रकाशस्तंभ पर चढ़कर दूरबीन से देखने लगी। उसने देखा कि प्रकाशस्तंभ से एक मील दूर एक तख्ता समुद्र की लहरों से थपेड़े खाता उछल रहा था और उस पर नौ मनुष्य किसी प्रकार अपने प्राण बचाने हेतु चिपके थे। प्रकाशस्तंभ से उतरकर ग्रेस ने अपनी माँ को पूरी बात बताते हुए कहा कि वह उन नौ लोगों को बचाने जा रही है।

ऐसा कहकर वह झट से नौका खोलकर उसमें कूद पड़ी। तूफान वाले समुद्र में अपनी जान पर खेलकर ग्रेस उन नौ लोगों को जिस किसी प्रकार बचाकर प्रकाशस्तंभ तक ले आई। माँ ने ग्रेस को गले लगा लिया। धन्य है बालिका ग्रेस और उसकी परोपकारी वृत्ति।

पूज्य गुरुदेव जैसा मैंने देखा—समझा—1

गुरुदेव का अवतरण

परमपूज्य गुरुदेव की विदाई हम सबको शूल की तरह चुभ रही है। जब तक वे साथ थे गहराई से देखने-समझने का अवसर ही नहीं मिला। निकटवर्ती वस्तु सदा कम महत्त्व की लगती है और उसका सही मूल्यांकन करना संभव नहीं होता। जिस पृथ्वी पर हम निवास करते हैं, वह कितनी द्रुतगति से चलती-घूमती है, इसका पता ही नहीं चलता।

अंतरिक्ष यात्रियों ने जब दूर से उदय होती, अस्त होती हुई नीलाभ पृथ्वी के सौंदर्य को देखा तो आश्चर्यचकित और भावविभोर हो गए, पर हम रोज उसी रूपराशि पृथ्वी पर रहते हुए भी न उसकी गति समझ पाते हैं और न प्रकाशवान आभा देख पाते हैं। अपनी काया को ही देखें उसके अंग-प्रत्यंगों में जो अद्‌भुत यंत्र लगे हुए हैं, उनका न तो स्वरूप दिखता है और न कृत्य समझ में आता है, पर विश्लेषणकर्त्ता जब उसका प्रत्यक्षीकरण-विश्लेषण करते हैं तब पता चलता है कि यह देह जो मोटी दृष्टि से देखने पर तुच्छ और हेय लगती है, वस्तुत: कितने भारी आश्चर्य भांडागार के रूप में विनिर्मित हुई है।

धरती और काया की तरह ही परमपूज्य गुरुदेव का महान अस्तित्व हम लोगों के बीच लंबे अरसे से विद्यमान था। वे कितने अद्‌भुत और कितने महान थे, इसकी जानकारी का एक अंश ही हम अति निकटवर्ती सहचरों को मिल सका, फिर जो थोड़ा दूर के फासले में रह रहे थे उनकी जानकारी और स्वल्प रही हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। चमड़े की आँख से वही देखा जा सकता है, जो स्थूल या प्रत्यक्ष है, जो समुद्र के किनारे खड़े रहते हैं, उनके हाथ सीप, घोंघे ही लगते हैं; मोती तो वे ही ढूँढ़ पाते हैं, जो गहराई तक प्रवेश करने का पुरुषार्थ कर सकने की क्षमता रख सकें।

गांधी जी को जिन्होंने बाहर से देखा वे दर्शन करने मात्र का लाभ प्राप्त कर सके, पर जिन्होंने उनके अंतरंग को परखा और प्रकाश ग्रहण किया वे नेहरू, पटेल, लाल बहादुर, राजेंद्र बाबू, राधाकृष्णन जैसे इतिहास प्रसिद्ध महामानव बनने में सफल हो गए। हम में से बहुत कम ऐसे हैं, जिन्होंने पूज्य आचार्य जी की हिमालय जैसी ऊँचाई और समुद्र जैसी गहराई को बारीकी से समझने का प्रयत्न किया है ।

आमतौर से उन्हें उतना ही समझा जाता रहा, जितना कि उनके स्थूल क्रियाकलाप चमड़े की आँखों से दिख पड़ते थे। उनकी एक लोकप्रसिद्ध आदत यह थी कि वे जो कुछ निज की पूजा, उपासना, साधना, तपश्चर्या करते थे, उसका फल बालकों को मिठाई बाँटने में खरच करने का-सा आनंद लेते रहते थे। फलस्वरूप उनके इर्द-गिर्द बालकों की भारी भीड़ लगी रहती थी। बालकों से मतलब भौतिक प्रगति के लिए लालायित और उलझनों से उद्विग्न उन व्यक्तियों से है, जो अपने पुरुषार्थ से अपनी गुत्थी सुलझा सकने में समर्थ नहीं हो पा रहे थे और किसी दूसरे की समर्थ सहायता की अपेक्षा करते थे।

आत्मिक दृष्टि से प्रौढ़ व्यक्ति अपने पुरुषार्थ से अपनी मंजिल आप पूरी करते हैं और प्रारब्ध की जटिलता को साहस और धैर्यपूर्वक सहन करते हैं, पर बालकों की मन:स्थिति उससे भिन्न होती है। वे अभिलाषा बहुत करते हैं, पर उस उपलब्धि की क्षमता नहीं रखते। मिठाई देने का मतलब इस वर्ग की छोटी-छोटी आवश्यकताओं को उपहारस्वरूप पूरी करके उन्हें प्रमुदित और उत्साहित देखना है।

गुरुदेव को इसमें बड़ा आनंद आता था। वे स्वभावत: खाने में बहुत उदासीन और खिलाने में बहुत रस लेने वाले ही थे। अपने भोजन को सस्ते-से-सस्ता और कम-से-कम रखने में उनकी जितनी अखरने वाली कंजूसी देखी जाती थी, उतनी ही सराहनीय उदारता दूसरों को खिलाने में मिलती थी। उनके चौके में सदा दर्जनों अतिथि उपस्थित रहते थे। अकेले तो शायद ही उन्होंने कभी खाया हो। जब कभी बिना अतिथि का दिन आ जाता तो दु:खी होकर उस श्रुति वचन की याद करते जिसमें कहा गया है कि "जो अकेला खाता है, सो पाप खाता है।"

उपासना के क्षेत्र में प्रवेश किया तो यह आदत दूसरे रूप में परिणत हो गई। आवेशग्रस्त, शोक-संतप्त उलझनों

में जकड़ा हुआ किंकर्त्तव्यविमूढ़ जो भी सामने आया, उसकी मनोव्यथा समझने में देर न लगी। करुणा से भरा हुआ हृदय देखते-देखते पिघल गया। नवनीत और हिम खंड तक गलते और पिघलते हैं, जब धूप उन्हें सताती और तपाती है। संत पराई व्यथा को अपनी व्यथा मानकर अपनी सहज संवेदना से व्यथित होकर गलते-पिघलते रहते हैं।

गुरुदेव का रहन-सहन और वेशभूषा देखकर उन्हें एक अतिसामान्य व्यक्ति समझा जा सकता था, पर वे वस्तुत: बहुत ऊँचे थे। उस ऊँचाई के आधार उनकी बालकों जैसी निर्मलता और बादलों जैसी उदारता मुख्य थी।

यों न जाने कितने देव-गुण लेकर वे जन्मे और कितने साधु स्वभाव बढ़ाते सँजोते चले गए, पर उनकी माता जैसी ममता इतनी विस्तृत थी कि जो भी संपर्क में आया, उनके सहज स्नेह में सराबोर होता चला गया। प्रथम बार अपरिचित के रूप में आने वाले ने भी यही समझा की हम आचार्य जी के चिर-परिचितों और सघन आत्मीय जनों में हैं।

पवन को हर कोई यह समझता है कि वह हमारे ऊपर ही पंखा डुला रहा है, सूर्य को हर कोई यह पाता है कि उसी के घर रोशनी, गरमी बिखेरने आता है, पर वस्तुत: पवन और सूर्य इतने विशाल और महान हैं कि एक नहीं असंख्यों को उनकी सहायता का लाभ समान रूप से मिलता रहता है।

बाधित और प्रतिबंधित तो वे होते हैं, जो स्वार्थी और संकीर्ण हैं, जिन्हें न मोह है, न लोभ, उनके लिए राग-द्वेष का, अपने-पराए का प्रश्न ही नहीं उठता। करुणा और ममता से भरा स्नेहसिक्त अंत:करण हिंस्र पशुओं पर भी आत्मीयता बरसाता रहता है, फिर नर-तनु धारियों की तो बात ही क्या? उनमें भी वे, जो उनकी सहायता प्राप्त करने की आशा में सामने आए, ऐसे लोगों को अपनी सामर्थ्य रहते निराश लौटाना उनके जन्मजात स्वभाव के विपरीत ही पड़ता। वे ऐसा कभी कर भी न सके और अमिट प्रारब्धों से ग्रस्त कुछेक चंद लोगों को छोड़कर प्राय: उन सभी की उन्होंने भरपूर सहायता की, जो तनिक भी सहयोग पाने की इच्छा से उनके संपर्क में आए थे।

अपनी उपासना, तपश्चर्या का जो पुण्य फल हो सकता था, उसका एक कण भी उन्होंने अपने लिए किसी भौतिक एवं आत्मिक प्रतिफल के लिए बचाकर नहीं रखा। जितना वे कमा सके, उसका राई-रत्ती उन्हें मिलता रहा, जो आशा लेकर उनके सामने आए।

कभी संभव हुआ तो उनके द्वारा की हुई सहायता के कारण लाभान्वित हुए व्यक्तियों की कहानी उन्हीं की जवानी प्रकाश में लाई जाएगी, इससे विदित होगा कि कितनों के अंधकारमय वर्तमान को प्रकाशपूर्ण भविष्य में उन्होंने बदल दिया और कितने उनका साहाय्य-सहयोग पाकर धन्य हो गए ।

गुरुदेव ने अपनी इस उदारता और समर्थता को सर्वसाधारण के सामने प्रकट न होने देने में सदा कठोरता बरती। वे नहीं चाहते थे कि उनकी कोई प्रशंसा करे या एहसान माने अथवा उन्हें चमत्कारी, उदार, दानी, तपस्वी एवं सेवाभावी माना जाए। वे इतने में ही संतुष्ट और प्रसन्न थे कि उन्हें सामान्य, सरल और सज्जन भर माना जाता रहे। सो उन्होंने कठोर प्रतिबंध लगाए थे कि कोई उनकी अलौकिक अनुभूतियों एवं सेवा-सहायताओं की चर्चा न करे। करना ही हो तो उन घटनाओं को भगवान की कृपा भर कहे, उनके व्यक्तित्व को कोई श्रेय न दे। सो उस प्रतिबंध के कारण असंख्यों प्रसंग अभी अविज्ञात ही बने हुए हैं, जिनको सुनने-जानने पर कोई भी व्यक्ति आश्चर्यचकित रह सकता है।

अब जबकि गुरुदेव चले गए तब उनकी प्रशंसा के लिए नहीं, वरन इसलिए इन प्रसंगों की चर्चा आवश्यक अनुभव होती है कि सर्वसाधारण को यह विदित हो सके कि आध्यात्मिक जीवन कितना समर्थ और उपयोगी सिद्ध हो सकता है और उसका अवलंबन लेकर कोई व्यक्ति अपना और दूसरों का कितना भला कर सकता है। उन प्रसंगों के प्रकाश में आने से एक बड़ा लाभ यह होगा कि आत्मसाधना का प्रतिफल समझा जा सकेगा और उस मार्ग को अपनाने के लिए सर्वसाधारण में उत्साह उत्पन्न किया जा सकेगा।

कहना न होगा कि गुरुदेव की उपासनापद्धति में जप, तप का जितना स्थान था, उससे हजार गुना महत्त्व वे जीवन-साधना को देते थे और अपनी आत्मिक उपलब्धियों का श्रेय वे आंतरिक कषाय-कल्मषों के उन्मूलन और बाह्य जीवन की आदर्शवादिता को देते थे। उन्होंने जब भी कहा यही कहा—मेरी उपासना को फलित करने का श्रेय उस जीवन-साधना को ही दिया जाना चाहिए, जिसमें अंतरंग की निर्मलता और बहिरंग की उत्कृष्टता को अविच्छिन्न रूप से जोड़ा-सँजोया जाता रहा।

ऐसा अध्यात्म यदि सर्वसाधारण की रुचि का विषय बन जाए और लोग उसे अपनाने में गुरुदेव जैसी सर्वतोन्मुखी प्रगति अनुभव करने लगें तो निस्संदेह उत्कृष्टता की जीवन-साधना अपनाने का आकर्षण असंख्यों को होगा और फलस्वरूप महान व्यक्तियों के उपवन चारों ओर लहलहाने लगेंगे। उस दृष्टि से अब जबकि गुरुदेव चले गए यह अनुभव करा ही दूँ कि उनके सहयोगी जिनने अपनी जीवनयात्रा में प्रकाश पाया, भौतिक एवं आंतरिक कठिनाइयों से छूटे तथा प्रगति-पथ पर चल सकने योग्य अनुदान उपलब्ध किया, उनके अनुभवों का एक संकलन प्रकाशित करने की व्यवस्था जुटाने में हर्ज नहीं है।

गुरुदेव होते तो वे अप्रसन्न होते और रोकते जैसा कि वे अब तक इस विचार को सदा निरुत्साहित करते रहे, पर अब जबकि उनकी प्रशंसा, निंदा का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ने वाला है और इस परिधि से वे बहुत आगे निकल गए तो उसमें हर्ज नहीं दिखता कि वे प्रसंग इस उद्देश्य से प्रकाशित कर दिए जाएँ कि आत्मसाधना की समर्थता और सार्थकता क्या है और उसे प्राप्त करने के लिए साधक को किस प्रकार की गतिविधियाँ अपनानी होती हैं।

इस प्रकाशवान से यदि गुरुदेव के चरणचिह्नों पर चलते हुए महामानव बनने की प्रेरणा कुछेक व्यक्तियों को भी मिल सके तो यह उपलब्धि निस्संदेह एक बहुत बड़ी ऐतिहासिक घटना होगी। इन दिनों इस संदर्भ में जितना अधिक विचार किया है, उतना ही यह लगा है कि उसमें अनुचित कुछ भी नहीं, उचित-ही-उचित है कि गुरुदेव के संपर्क में आने वालों की उत्साहवर्द्धक अनुभूतियों, भौतिक एवं आत्मिक उपलब्धियों का संग्रह करने एवं प्रकाशित करने के लिए कदम बढ़ाया जाए। अस्तु, यह कार्य हाथ में लिया ही जा रहा है। इस प्रकार के प्रसंग चित्रों सहित मेरे पास हरिद्वार के पते पर भेजे जा सकते हैं। उनका संपादन करके यथासमय प्रकाशन की व्यवस्था की जाएगी।

गुरुदेव का जीवन आध्यात्मिकता और मानवता का एक समग्र एवं व्यावहारिक दर्शन है, जिसे उनकी गरिमा व्यक्त करने के लिए नहीं मानव तत्त्व की महानतम उपलब्धि 'दिव्यता' को लोकरुचि का विषय बनाने के लिए प्रकाश में लाया जाना चाहिए। आज तो उसकी उपयोगिता इस दृष्टि से भी अत्यधिक है कि धर्म और अध्यात्म का विकृत और अवांछनीय स्वरूप ही सर्वत्र फैला पड़ा है और उस विडंबना के फलस्वरूप उस मार्ग पर चलने वाले दंभ एवं छद्म के शिकार होते चले जाते हैं। कोल्हू के बैल की तरह चिरकाल तक चक्कर काटते रहने और कठोर श्रम करने एवं कष्ट सहने पर भी किसी के हाथ कुछ लगता नहीं।

असफलता की लज्जा छिपाने के लिए लोग, कपोल-कल्पित कुछ मिलने की चर्चा तो करते रहते हैं, पर वस्तुत: यदि उनका अंतरंग पढ़ा जाए तो खाली हाथ ही पाए जाएँगे। वास्तविकता छिपी कहाँ रहती है, वह मनुष्य के रोम-रोम से फूटती है और अंतत: पकड़ में आ ही जाती है। असफल अध्यात्मवादी दूसरों पर बुरा असर छोड़ते हैं। इस दिशा में निराशा और उपेक्षा की छाप छोड़ते हैं। शिक्षित और समझदार लोगों में जब इस प्रसंग की चर्चा होती है तो उपहास और व्यंग्य ही व्यक्त होता है। अशिक्षित और अविकसित लोगों तक यदि यह आत्मवाद सीमित रहे, केवल अंधविश्वास ही यदि मात्र श्रद्धा का आधार रह जाए और परीक्षा की कसौटी पर खरा साबित न हो तो ऐसे दुर्बल आधार को कब तक जीवित रखा जा सकेगा।

ठहरती वही चीज है, जिसमें वास्तविकता हो और जिसे परीक्षा की हर कसौटी पर खरा सिद्ध किया जा सकता हो। आज सर्वत्र आत्मविद्या का उपहास उड़ाते देखा जा सकता है, इसका प्रधान कारण यह है कि उसकी उपयोगिता और यथार्थता सिद्ध नहीं की जा सकी। यों तर्क और प्रमाण को सदैव मान्यता मिलती रही है, पर यह तो विशेष रूप से बुद्धिवाद का युग है, इसमें उन्हीं तथ्यों को मान्यता मिल सकती है, जिन्हें प्रामाणिक सिद्ध किया जा सके। विज्ञान, शिल्प, शिक्षा, कृषि, व्यवसाय, कला, चिकित्सा आदि तथ्यों का कोई मजाक नहीं उड़ाता; क्योंकि उनकी यथार्थता प्रत्यक्ष है। यदि अध्यात्म भी अपनी प्रामाणिकता और उपयोगिता प्राचीनकाल की तरह आज भी सिद्ध कर सका होता तो कोई कारण नहीं कि इस सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य को अपनाने के लिए लोग लालायित न होते और उसे प्राप्त करने के लिए समुचित पुरुषार्थ न करते।

आज आत्मविद्या एक प्रकार से अप्रामाणिक, उपेक्षित और उपहासास्पद बनी हुई है और इस अपवाद के कारण व्यक्ति तथा समाज को महती क्षति उठानी पड़ रही है। ऐसी परिस्थिति में यह और भी अधिक आवश्यक हो जाता है कि

आत्मविज्ञान को उसकी उपयोगिता और प्रामाणिकता के साथ सर्वसाधारण के सम्मुख प्रस्तुत किया जाए और साथ ही यह भी बताया जाए कि अध्यात्मवाद का जो ढाँचा इन दिनों खड़ा दिखता है, वह अवास्तविक, भ्रांत एवं विकृत है। इसमें प्राचीनकाल के आत्मवेत्ताओं के स्थूल क्रियाकलाप की भोंड़ी नकल मात्र है, वास्तविकता उसमें नहीं के बराबर शेष रह गई है। अस्तु उसका कोई प्रतिफल परिलक्षित न हो रहा हो तो इसमें अचरज की बात ही क्या है? ❑

***

एक बार श्रीकृष्ण, बलदेव एवं सात्यकि रात्रि के समय रास्ता भटक गए। सघन वन था। न आगे की राह सूझ रही थी न पीछे ही लौट सकते थे। इसलिए उन्होंने वहीं विश्राम करने का निर्णय किया। तय हुआ कि तीनों बारी-बारी से जागकर पहरा देंगे।

सबसे पहले सात्यकि जागे और बाकी दोनों सो गए। एक पिशाच पेड़ से उतरा और सात्यकि को मल्ल युद्ध के लिए ललकारने लगा। सात्यकि ललकार सुन क्रोधित होकर उससे भिड़ गए। जैसे-जैसे पिशाच क्रोध करता सात्यकि दुगने क्रोध से लड़ने लगते। सात्यकि जितना क्रोध करते, पिशाच का आकार उतना ही बढ़ता जाता। सात्यकि को बहुत चोटें आईं। अब बलदेव जागे।

सात्यकि बलदेव को बिना कुछ बताए सो गए। बलदेव के साथ भी पूर्णतया सात्यकि की तरह ही हुआ। घायल बलदेव ने श्रीकृष्ण को कुछ न बताया और चुपचाप सो गए। कृष्ण को भी पिशाच ने चुनौती दी। पिशाच जितने अधिक क्रोध में श्रीकृष्ण को संबोधित करता, कृष्ण शांत भाव से मुस्करा देते परिणामतः पिशाच का आकार घटता जाता।

अंत में वह एक कीड़े जितना रह गया, जिसे कृष्ण ने अपने उत्तरीय के छोर में बाँध लिया। प्रातःकाल बलदेव व सात्यकि ने अपनी दुर्गति की कहानी श्रीकृष्ण को सुनाई तो उन्होंने उस कीड़े को दिखाते हुए कहा कि यह क्रोधरूपी पिशाच है, जो क्रोध करने से बढ़ता जाता है। मैंने मुस्कराकर इसका सामना किया तो यह इतना-सा हो गया। क्रोधी के समक्ष क्रोध से नहीं, शांत भाव से रहना चाहिए।

***

आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता

अध्यात्मप्रधान देश भारत में आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता कोई नई चीज नहीं, लेकिन वैज्ञानिक स्तर पर इस संदर्भ में एसक्यू के रूप में इसकी अवधारणा अवश्य नई है। आधुनिक विज्ञान मानवीय मस्तिष्क की क्षमताओं की खोज करते-करते एसक्यू अर्थात आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता तक आ पहुँचा है। इसका शुभारंभ 20वीं सदी के प्रारंभ में आईक्यू के रूप में हुआ था। इसे तर्कसंगत, नियम आधारित समस्या के समाधान की बुद्धिमत्ता कहकर पुकार सकते हैं, जिसका हम न्यूनाधिक रूप में उपयोग करते हैं।

इसके बाद भावनात्मक बुद्धिमत्ता के मापक के रूप में ईक्यू सन् 1980 के दशक में डेनियल गोलमेन द्वारा ईजाद हुआ। यह हृदय व भावनाओं से जुड़ी बुद्धिमत्ता है, जिसे विश्वास, संवेदना, भावनात्मक जागरूकता और स्व-नियंत्रण तथा दूसरों के भाव के प्रति उपयुक्त प्रतिक्रिया पर आधारित माना जाता है।

एसक्यू में ये दोनों समाहित हैं। इसमें जीवन के उच्चतर मूल्य, अर्थपूर्ण उद्देश्य एवं समग्र सोच व समझ समाहित रहते हैं, जो अधिक गुणवत्तापूर्ण एवं रचनात्मक जीवन को संभव बनाते हैं। उच्च एसक्यू के प्रतीक हैं—संवेदना से युक्त मौलिक एवं समाधानपरक सोच और उस ऊर्जा स्रोत तक पहुँच, जो अहं एवं अपने दैनिक जीवन की भौतिक सीमा के पार स्थित है।

हम सभी जीवन के किसी-न-किसी मोड़ पर इस उच्चतर सत्ता से संपर्क में आते हैं। शोध के आधार पर पाया गया है कि हर संस्कृति, शिक्षा या पृष्ठभूमि के 70 प्रतिशत प्रौढ़ व्यक्ति, इस पीक-एक्सपीरिएंस या चरम अनुभव से गुजरते हैं, जब वे सृष्टि की हर चीज में सुंदरता और एक अद्भुत एकता देखते हैं या जब उनका हृदय प्रेम से आप्लावित होता है। हालाँकि ये अनुभव आते-जाते रहते हैं, लेकिन ये इस उच्चतर एवं गहन क्षेत्र से आ रही ऊर्जा के संपर्क के कारण घटित होते हैं।

बुद्धि के ऊपर बताए गए विभिन्न प्रारूप मस्तिष्क के विभिन्न खंडों से जुड़े हुए पाए गए हैं। आईक्यू जहाँ बाएँ मस्तिष्क से जुड़ा हुआ है तो वहीं ईक्यू को दाएँ मस्तिष्क से जोड़कर देखा जाता है। जबकि एसक्यू समग्र मस्तिष्क से जोड़कर देखा जाता है। इसी आधार पर आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता बुद्धि की उच्चतम क्षमता है, जो हमारे ज्ञान, प्रज्ञा, करुणा, ईमानदारी, आनंद, प्रेम, रचनात्मकता और शांति जैसे आत्मा के गुणों व क्षमताओं को जाग्रत करती है।

आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता की अवधारणा का प्रतिपादन करने वाली विदुषी दानाह जोहर के अनुसार जीवन का संचालन तीन तरह की संपदाओं से होता है, जो भौतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक हैं। भौतिक का आधार आईक्यू पर आधारित बुद्धिमता है, जो व्यक्तिकेंद्रित तथा स्वार्थ एवं अहंकार से प्रेरित होती है।

इसके आगे सामाजिक संपदा भावनाओं पर आधारित होती है, जिसे ईक्यू का नाम दिया गया है। राजनीतिक अर्थशास्त्री फ्रांसिस फुकुयामा के अनुसार सामाजिक संपदा का मापन समाज में आपसी विश्वास, लोगों की एकदूसरे के प्रति संवेदना एवं सामुदायिक कल्याण के प्रति निष्ठा के आधार पर तय होता है। किसी समुदाय के स्वास्थ्य को इसमें घटित हो रहे अपराध, तलाक, अशिक्षा एवं मुकदमेबाजी की दर के आधार पर मापा जा सकता है।

दानाह जोहर के अनुसार, विश्व में अधिकांश गठबंधन भौतिक आधार पर तय होते हैं, जो अधिक टिकाऊ नहीं होते। इनके टिकाऊ बनने के लिए सामाजिक एवं आध्यात्मिक संपदा का आधार का होना भी अपेक्षित रहता है। मालूम हो कि तर्कपूर्ण सोच—आईक्यू का आधार लिए हुए होती है, जैसे कि मैं क्या सोचता हूँ; ईक्यू का आधार होता है, मैं क्या अनुभव करता हूँ? जबकि एसक्यू अर्थात आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता का आधार होता है, मैं क्या हूँ?

यह एक ऐसी मानवीय क्षमता है, जो जीवन के परम लक्ष्य के बारे में प्रश्न करने व स्वयं को इस जगत् के साथ समायोजित करने में सक्षम बनाती है, जिसमें हम रह रहे हैं। इसका परिणाम होता है—बेहतर मानसिक स्वास्थ्य-संतुलन एवं जीवन के सार्थक लक्ष्य का बोध।

तेहरान विश्वविद्यालय में 270 नर्सों पर हुए शोध अध्ययन में, आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता और मानसिक स्वास्थ्य के बीच सघन संबंध पाया गया। इसके साथ सचेतन विकास, कार्यक्षमता में वृद्धि, भावातीत जागरूकता और जीवन की समग्र समझ में वृद्धि भी देखी गई। निष्कर्षत:, जिन नर्सों में आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता अधिक थी, वे स्वयं मानसिक रूप में अधिक स्वस्थ थीं, उनका जीवन अधिक उद्देश्यपूर्ण था और रोगियों के लिए भी वे अधिक उपयोगी साबित हो रही थीं।

इस तरह एसक्यू चूडांत बुद्धिमत्ता है, जो मूल्यों व जीवन के अर्थ को समाहित किए रहती है, मानसिक समायोजन की क्षमता लिए होती है, जीवन को गैर-भौतिक एवं निरपेक्ष भाव की ओर ले जाती है। इसमें आध्यात्मिक स्रोत, उच्च मूल्य और स्वप्रेरित आचारसंहिता जुड़े होते हैं, जो व्यक्ति की दैनिक कार्यक्षमता एवं स्वास्थ्य में वृद्धि करते हैं।

उच्च आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता वाले लोग देह व भौतिकता के पार जाते हैं तथा चेतना के उच्च स्तर को अनुभव करते हैं, आध्यात्मिक स्रोत से जुड़कर समस्याओं के समाधान पाते हैं और साथ में सौम्यता, सादगी, क्षमा, न्याय व करुणा जैसे भाव लिए होते हैं। इनके जीवन में संतुष्टि का स्तर बहुत उच्च रहता है।

ऐसे व्यक्ति अधिक दबाव व तनाव, भय व द्वंद्वों को सहने की क्षमता रखते हैं, वे आंतरिक रूप से अधिक सुदृढ़ होते हैं व जीवन की चुनौतियों का सामना बिना मानसिक संतुलन खोए बखूबी करना जानते हैं। ऐसे व्यक्ति अपनी भावनाओं को गहराई से समझते हैं व दूसरों के प्रति भी संवेदनशील रहते हैं। अपने जीवन में वे जहाँ अनासक्त भाव रखते हैं, तो वहीं समाज के लिए वे एक अर्थपूर्ण जीवन जीते हैं।

दानाह जोहर ने आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता के 12 तत्त्वों की भी चर्चा की है, जो विचारणीय हैं—

(1) **सेल्फ अवेयरनेस**—अर्थात स्व-जागरूकता, जो क्रमिक रूप में आत्मबोध एवं आत्मज्ञान की ओर ले जाती है। इसे अपने वास्तविक 'स्व' के प्रति ईमानदारी भी कह सकते हैं, जिसमें दूसरों का सम्मान करते हुए अपने जीवन को जीना शामिल है।

(2) **स्पोंटेनियटी**—अर्थात वर्तमान में पूरे दायित्व बोध के साथ जीना और अपने कार्यों की पूरी जिम्मेदारी लेना। इसे एक स्व-अनुशासित संयमित जीवन कह सकते हैं, जो जीवन को एक प्रवाह प्रदान करता है।

(3) **बीइंग विजन एंड वेल्यूलेड**—अर्थात अपने सिद्धांतों एवं गहन विश्वास पर आधारित जीवन, आचरण एवं कर्म। इसे जीवन में मूल्यों एवं दूरदर्शिता का समावेश कह सकते हैं। व्यक्ति इनके मापदंडों पर स्वयं को कसता रहता है।

(4) **होलिज्म**—अर्थात समग्रता का बोध, जो सहकार व एकता को स्वाभाविक बनाता है। इसके अभाव में प्रतिद्वंद्विता पनपती है, जो विभेद व अशांति को जन्म देती है।

(5) **कम्पेशन**—अर्थात करुणा का भाव, भाव-संवेदना, जिसके रहते हम दूसरों की, यहाँ तक कि विरोधियों तक की भावनाओं को समझते हैं व तदनुरूप संवेदनशील एवं धर्ममय व्यवहार या प्रतिक्रिया करते हैं।

(6) **सेलिब्रेशन ऑफ डाइवर्सिटी**—अर्थात दूसरों को भिन्नता के बावजूद उनका सम्मान, जिसके आधार पर जीवन में विविधता के बावजूद आपसी एकता एवं सौहार्द का भाव रहता है तथा किसी का अपमान नहीं किया जाता।

(7) **फील्ड इंडिपेंडेंस**—अर्थात भीड़ से हटकर अपने विश्वास, धारणा, आस्था पर खड़े रहना तथा अपने सत्य पर डटे रहना। इसे औचित्य को लेकर अलोकप्रिय होने के खतरे के बावजूद अकेले खड़े होने का साहस कह सकते हैं।

(8) **ह्यूमिलिटी**—अर्थात विनम्रभाव, एक बड़े अभियान के एक नन्हे से घटक के रूप में विश्व में अपने सच्चे स्थान का बोध। यह बोध रखना कि मैं गलत भी हो सकता हूँ। इसलिए इसे सत्य के प्रति सतत ग्रहणशील एवं जागरूक मन:स्थिति कह सकते हैं, जो सदैव सीखने के लिए तत्पर रहती है।

(9) **टेंडेंसी टू आस्क फंडामेंटल व्हाई क्वेश्चन**—अर्थात चीजों की गहरी समझ व इनकी तह तक जाने की तत्परता। आइंस्टाइन के बचपन में इन्हीं प्रश्नों की भरमार रहती थी, जिसके कारण शिक्षकों द्वारा बेवकूफी भरे प्रश्न पूछने के लिए उन्हें दंडित भी किया जाता था, लेकिन इन्हीं प्रश्नों ने उन्हें सदी का सबसे महान वैज्ञानिक बनाया।

(10) **एबिलिटी टू रिफ्रेम**—अर्थात किसी समस्या या परिदृश्य से दूर हटकर इसको बृहत्तर संदर्भ में देखने की क्षमता। आज की सबसे बड़ी समस्या तात्कालिक लाभ एवं

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

अदूरदर्शिता है, जिसके कारण हम स्थायी सुख, शांति व लाभ से वंचित रह जाते हैं।

(11) **पॉजिटिव यूज ऑफ एडवर्सिटी**—अर्थात गलतियों, असफलताओं व दु:ख से सीखने व विकसित होने की क्षमता। इसके अंतर्गत हम गलतियों से सीखते हैं, न कि दूसरों पर दोषारोपण करते हैं तथा कठिनाइयों के बीच भी डटे रहते हैं।

(12) **सेन्स ऑफ वोकेशन**—अर्थात अर्जित को वापस देने का भाव या निष्काम सेवा, जिसे परमपूज्य गुरुदेव आराधना के रूप में प्रतिपादित करते हैं। यज्ञ में '**इदं न मम**' के पीछे भी यही भाव अपने चरम पर सक्रिय रहता है, जो यज्ञभाव से दी आहुति को श्रेष्ठतम कर्म बनाता है।

इस तरह आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता जीवन की चरम बुद्धि के रूप में प्रतिपादित एक अवधारणा है, जिसका परमपूज्य गुरुदेव आध्यात्मिक जीवन-दृष्टि एवं जीवनशैली के साथ व्यावहारिक अध्यात्म के रूप में प्रतिपादन करते आए हैं और जिसे गायत्रीसाधकों द्वारा सद्बुद्धि के लिए की गई प्रार्थना एवं इसकी साधना की फलश्रुति के रूप में प्राप्त ऋतंभरा प्रज्ञा के रूप में भी देखा जा सकता है। ❑

रोम का सम्राट किसी बात पर अपने मंत्री से क्षुब्ध हो उठा। उसे लगा कि मंत्री भगवान को मुझसे बड़ा मानकर मेरा निरादर कर रहा है। राजा ने निर्णय लिया कि जब मंत्री अपना जन्मदिन मनाएगा, उसी दिन उसे फाँसी दे दी जाएगी। मंत्री के जन्मदिवस पर भजन-संगीत और भोज का आयोजन था। तमाम रिश्तेदार और मित्र उपस्थित थे।

उसी समय राजा के दूत ने एक लिखित आदेश मंत्री को थमा दिया। उसमें लिखा था—आज शाम छह बजे मंत्री को फाँसी दी जाएगी। यह आदेश पढ़ते ही मंत्री के रिश्तेदार और मित्र हतप्रभ रह गए। पत्नी व बच्चे रोने लगे, किंतु मंत्री मस्ती में भगवान का स्मरण कर नाचने लगा। दूत यह देखकर दंग रह गया। उसने यह बात राजा को बताई।

राजा ने मंत्री के यहाँ जाकर मंत्री से पूछा—"क्या तुम्हें नहीं पता कि तुम्हें कुछ घंटे बाद फाँसी दे दी जाएगी?" मंत्री ने कहा—"राजन्! मैं आपके प्रति कृतज्ञ हूँ। मैं आज के दिन ही जन्मा था और आपकी कृपा से आज ही शरीर छोड़कर प्रभु में विलीन हो जाऊँगा। आज मेरे सब मित्र व रिश्तेदार भी यहाँ मौजूद हैं। आपने मेरी मृत्यु को आनंद महोत्सव में बदलकर मुझ पर बहुत एहसान किया है।" राजा ने कहा—"तुमने मृत्यु को जीत लिया है और तुम्हें दंडित करने का कुकृत्य मैं नहीं कर सकता।" राजा ने उसकी फाँसी की सजा टाल दी।

बुराँश-एक औषधीय गुणों से भरपूर पौधा

बुराँश हिमालयी क्षेत्रों के जंगलों में पाया जाने वाला एक छोटे-से मध्यम आकार का सदाबहार पौधा है, जिसमें लाल व गुलाबी रंग के बहुत सुंदर फूल लगते हैं, जो तमाम औषधीय गुणों से भरपूर हैं। अप्रैल-मई माह में हिमालय के उच्च क्षेत्रों में इसके चटक लाल रंग के फूलों से लदे वृक्ष सहज ही यात्रियों का ध्यान आकर्षित करते हैं। हालाँकि ऊँचाई के साथ इसकी रंगत गुलाबी से सफेद भी देखी जा सकती है।

मूलतः बुराँश एशियन मूल का पेड़ है, जो भारत सहित नेपाल, भूटान, चीन, पाकिस्तान आदि देशों में पाया जाता है। भारत में कश्मीर से लेकर अरुणाचल तक उच्च हिमालयी क्षेत्र में इस सुंदर पौधे के दर्शन किए जा सकते हैं। नागालैंड के माउंट जाफु में इसका 108 फीट (33.2 मीटर) ऊँचाई लिए हुए सबसे ऊँचा वृक्ष है, जो गिनीज बुक ऑफ रिकॉर्ड में दर्ज है। हिमाचल व उत्तराखंड में इसे क्रमशः राज्य पुष्प एवं राज्य वृक्ष का दरजा प्राप्त है। नेपाल का भी यह राष्ट्रीय पुष्प है।

बुराँश पौधे का वैज्ञानिक नाम रोडोडेंड्रन अर्बोरियम है व अँगरेजी में इसे रोडोडेंड्रन नाम से जाना जाता है। इसके प्रचलित नाम बुरस, बराह, बुरुंश तथा ब्रास के फूल आदि भी हैं एवं संस्कृत में इसे कुर्वाक नाम से संबोधित किया गया है। इसके वृक्ष सामान्यतया 10 से 15 मीटर तक ऊँचाई लिए होते हैं, जो प्रायः 7-9 हजार फीट ऊँचाई में देवदार व बाँज के वृक्षों के बीच पाए जाते हैं। इसके पत्ते 3-7 इंच लंबाई लिए गुच्छों में होते हैं, जो बाहर से गहरे हरे रंग व अंदर से कुछ स्लेटी रंग लिए होते हैं। इसका पुष्पगुच्छ 15 से 20 घंटीनुमा फूलों को समाहित किए होता है, जो 2 इंच चौड़ा व सवा से दो इंच लंबा होता है।

बुराँश के फूल का स्वाद खट्टा व मीठा होता है, जिससे बेहतरीन रस बनाया जा सकता है। पहाड़ी क्षेत्रों में बुराँश का रस गरमियों के सबसे लोकप्रिय पेय के रूप में उपयुक्त होता है। रस के अतिरिक्त इससे स्क्वेश, जैम, चटनी व शरबत भी बनाए जाते हैं। पहाड़ों में लोग इसकी पंखड़ियों को सीधा चबाकर भी जरूरत पड़ने पर अपनी भूख व प्यास को शांत करते हैं।

अपनी प्राकृतिक छटा के साथ बुराँश औषधीय गुणों से भरपूर पौधा भी है। इस पर हुए शोध के अनुसार बुराँश में एंटी डायबिटिक, एंटी इन्फ्लामेटरी और एंटी बैक्टीरियल गुण पाए जाते हैं, जो इसे स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत उपयोगी बनाते हैं। फूल के अतिरिक्त इसकी जड़ों, पत्तियों, तनों व छालों के भी औषधीय उपयोग किए जा सकते हैं।

प्रचलित रूप में सिरदरद में बुराँश के पत्तों को पीसकर सिर पर लगाने अर्थात बुराँश के पत्तों का चूर्ण बनाकर नाक से सूँघने पर सिरदरद से आराम मिलता है। साथ ही बुराँश घाव व त्वचा की सूजन को भी कम करता है। बुराँश का रस पेटदरद में भी राहत देता है।

आयुर्वेद और होम्योपैथिक दवाइयों में इन्फ्लेमेशन, गाउट, ब्रोंकाइटिस और गठिया के उपचार में बुराँश के फूल व पत्तियों का उपयोग किया जाता है। इसकी पत्तियों को इन्फ्लेमेशन संबंधी बीमारियों में बहुत लाभकारी पाया गया है। अपने एंटीऑक्सीडेंट गुण के कारण यह हृदय रोग की रामबाण दवा है।

इसकी पंखड़ियाँ जुकाम, बुखार व मांसपेशियों के दरद में आराम देने का काम करती हैं। बुराँश को डाइयूरेटिक औषधि माना जाता है, जो गुरदा रोगियों में खुलकर पेशाब लाने में मदद करती है तथा इसकी छाल यकृत रोग में लाभकारी रहती है। श्वास के रोगों में तंबाकू के पत्तों के साथ इसके सूखे पत्तों को मिलाकर जलाने पर निकले धुएँ से श्वसन तंत्र संबंधी विकारों में लाभ मिलता है।

मधुमेह अर्थात डायबिटीज रोग में बुराँश को बहुत उपयोगी माना जाता है, इसमें एंटी हाइपरग्लाईसिमिक गुण रक्त में विद्यमान शुगर की मात्रा को नियंत्रित करता है। कुछ लोगों के शरीर में गरमी बने रहने के कारण उन्हें जलन होती है। ऐसे में बुराँश के फूलों का शरबत शरीर में जलन को शांत करता है।

'नारी सशक्तीकरण' वर्ष

यह पौधा आयरन, कैल्सियम, जिंक, कॉपर आदि पौष्टिक तत्त्वों से भरा भी होता है तो वहीं इसमें उपस्थित एंटी माइक्रोबियल गुण शरीर को स्वस्थ रखते हैं व तन की कमजोरी को दूर करते हैं। आयरन तत्त्व के बाहुल्य के कारण बुराँश रक्ताल्पता अर्थात खून की कमी की समस्याओं में कारगर रहता है। यह हीमोग्लोबिन बढ़ाने में मदद करता है तथा अनीमिया से बचाव करता है। कैल्सियम की प्रचुर मात्रा के कारण यह हड्डियों को मजबूत बनाता है। इससे हड्डियों के साथ यह जोड़ों के दरद में सहायक रहता है। बुराँश के पत्तों को पीसकर जोड़ों पर लगाने से जोड़ों के दरद में लाभ होता है।

आईआईटी मंडी में हुए शोध के अनुसार बुराँश के फूल की पंखड़ियों में फायटोकेमिकल पाया जाता है, जो कोरोना वायरस के उपचार के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस तरह कोरोनाकाल में बुराँश प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने वाली एक प्रभावशाली औषधि के रूप में उभर कर सामने आया है। बुराँश में विद्यमान कुअरसेटिन एवं रयूटिन तत्त्व कैंसर के खतरे को कम करते हैं, ऐसा पाया गया है।

इस तरह बुराँश का पौधा एवं फूल मात्र प्रकृति का सौंदर्यवर्द्धक उपहार ही नहीं हैं, बल्कि कई औषधीय गुणों से भरपूर भी हैं, जो मानव के लिए वरदान से कम नहीं है। हालाँकि सर्वसाधारण उपयोग के अतिरिक्त विशिष्ट चिकित्सकीय उपयोग से पूर्व चिकित्सकों का परामर्श उचित रहता है। इस तरह बुराँश एक अत्यंत उपयोगी एवं लाभकारी औषधीय पौधा है। ❑

मतंग ऋषि पशु-पक्षियों के प्रति बहुत स्नेह रखते थे। प्रायः वे अध्ययन और उपासना के बाद पक्षियों के साथ खेलने लग जाते थे। पक्षी इशारों पर उनके पास आ जाते और उनके कंधों व हाथों पर बैठ जाते थे। एक दिन जब वे पक्षियों के बीच चहक रहे थे, तभी अनंग ऋषि वहाँ आए। वह मतंग ऋषि का बहुत सम्मान करते थे। उन्हें पक्षियों के साथ खेलता देखकर वे बोले—"महाराज! आप इतने बड़े विद्वान होकर बच्चों की तरह चिड़ियों के साथ खेल रहे हैं। इससे आपका मूल्यवान समय नष्ट नहीं होता?"

मतंग ऋषि यह सुनकर मुस्करा दिए और उन्होंने पास रखे धनुष की डोरी ढीली करके रख दी। अनंग ऋषि बोले—"आपने इस धनुष की डोरी को ढीला करके क्यों रख दिया।" मतंग ऋषि बोले—"हमारा मन धनुष की तरह है। यदि धनुष पर डोरी हमेशा चढ़ी रहे तो उसकी मजबूती कुछ ही समय में चली जाती है और वह जल्दी टूट जाता है, किंतु यदि डोरी काम पड़ने पर ही चढ़ाई जाए तो वह अधिक समय तक टिकता है। इसी प्रकार मन को काम के बाद यदि आराम मिलता रहे तो इससे मन स्वस्थ व मजबूत बनता है।" मतंग ऋषि का उत्तर सुनकर अनंग ऋषि बोले—"मैं आपकी बात समझ गया। अब मालूम हुआ कि आप हर क्षेत्र में सफल कैसे हैं।"

यथार्थ की कसौटी पर विश्वास

विगत अंक में आपने पढ़ा कि अध्यात्म तत्त्वज्ञान के दार्शनिक और प्रयोगात्मक, दोनों ही पक्षों का जिम्मा सँभालने वाले तंत्र को खड़ा करने के उद्देश्य से पूज्य गुरुदेव ने ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की रूपरेखा बनाई। स्वयं पूज्यवर द्वारा चुने गए कुछ कार्यकर्त्ताओं को इसकी तैयारियों की जिम्मेदारी भी दी गई, जिनमें स्वयं श्रद्धेय डॉ० साहब पूज्य गुरुदेव के कहे अनुसार कुछ दुर्लभ ग्रंथों समेत विभिन्न प्रकार के शोध हेतु उपयोग में आने वाले आवश्यक उपकरणों की खोज एवं संस्थान में उनकी विधिवत् व्यवस्था बनाने में संलग्न थे। यथायोग्य सामग्री जुटाने हेतु उन्होंने देश के अनेक हिस्सों यथा बनारस, पुणे, मुंबई, आडियार आदि की यात्रा भी की। दिव्यसत्ता के संरक्षण में होने जा रही इस अभिनव स्थापना में गुरुसत्ता के आशीष की प्रत्यक्ष अनुभूति प्रायः सभी कार्यकर्त्ताओं ने की, जिनमें विशेषतः श्रद्धेय डॉ0 साहब को तो अविस्मरणीय घटनाओं का साक्षात्कार हुआ। दिव्य प्रयोजनों में निमित्त बन जाने की सुपात्रता का विचार प्रायः सभी के मन में एक बार अवश्य आया, किंतु कार्य के संपादन के दौरान घटी विलक्षण घटनाओं ने कार्यकर्त्ताओं का भ्रम दूर किया व साथ ही उन्हें गुरुसत्ता की समर्थता व उन्हीं की कृपा से कार्यों में आई कुशलता का भान कराया। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण ...

क्षय का यज्ञ उपचार

इसी गोष्ठी में गुरुदेव ने कहा कि संस्थान में जो प्रयोग किए जाने हैं, उनके बारे में किसी को संदेह नहीं होना चाहिए। गायत्री तपोभूमि में 1956-57 में भी यज्ञ चिकित्सा का परीक्षण किया जा चुका है। यहाँ ये प्रयोग बड़े और व्यवस्थित रूप में किए जा रहे हैं। हमारे अपने हिसाब से स्वरूप में इतना ही अंतर है। बाकी इनका प्रभाव दुनिया देखेगी। उसी दिन मथुरा से एक कार्यकर्त्ता शांतिकुंज आए हुए थे। नाम था श्यामलाल। वे गुरुदेव के आध्यात्मिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों से कम ही जुड़े हुए थे। अपने आप को उनका अनुयायी या शिष्य कम और मित्र ज्यादा मानते थे। गुरुदेव भी उन्हें मित्रवत् ही समझते थे।

सन् 1956 में उनकी आयु करीब चालीस वर्ष रही होगी। शुरू में कुछ दिन तक खाँसी उठी और फिर खाँसते-खाँसते मुँह से रक्त आने लगा। वैद्यों को बताया तो पता चला कि खाँसने के कारण गले में खरोंचें आ गई हैं, इससे रक्त आने लगा है। लक्षण देखकर अनुमान से निदान करते हुए आयुर्वेदिक औषधियाँ दी जाने लगीं। उनसे कोई लाभ नहीं हुआ। कुछ और वैद्यों ने परीक्षा की। उन्होंने क्षयरोग की आशंका जताई। तब यह रोग असाध्य समझा जाता था। पता लगने पर मित्र, परिचित और संबंधी तो क्या अपने स्वजन और पत्नी, पुत्र-कलत्र भी किनारा करने लगते। कहीं यह रोग उन्हें भी न लग जाए।

प्रत्यक्ष को क्या प्रमाण

परिवार के लोग तिरस्कार न कर दें, इस भय से श्यामलाल जी ने घर के लोगों को नहीं बताया। वे गुरुदेव के पास सुबह-शाम रोज आते थे। समय मिलने पर दिन में भी तपोभूमि आ जाते। गायत्री तपोभूमि का तब निर्माण ही चल रहा था। वैद्य द्वारा क्षय रोग की आशंका जताते ही उन्होंने गुरुदेव से कहा। सुनकर गुरुदेव ने चिंता जताने के स्थान पर श्यामलाल जी को आश्वस्त करने वाली आशाभरी वाणी में कहा—"चिंता मत करो मित्र! मैं तुम्हारा यह रोग एक माह में दूर कर दूँगा। हमारे ऋषि-मुनियों ने इसके लिए जिस तरह के उपचार की व्यवस्था की है, उससे यह रोग तो क्या

इसकी याद दिलाने वाली खाँसी का उभार भी कभी नहीं होगा।''

गुरुदेव ने उसी दिन उपचार क्रम निश्चित कर दिया। उस क्रम के अनुसार श्यामलाल जी को अगले दिन सुबह पाँच बजे ही तपोभूमि आ जाना था और वहाँ यज्ञशाला में बैठकर चौबीस आहुतियाँ देनी थीं। आहुतियों के लिए विशेष हवन सामग्री का प्रबंध गुरुदेव ने उसी दिन करा लिया। इसके लिए वे स्वयं तपोभूमि के दो कार्यकर्त्ताओं को साथ लेकर वृंदावन के पास किसी जगह गए और जड़ी-बूटी लेकर आए। कार्यकर्त्ताओं को इसलिए साथ ले गए कि आगे जब भी जरूरत हो, वे उस जगह से दोबारा औषधियाँ ला सकें। इस व्यवस्था के बाद उन्होंने श्यामलाल जी को अगले ही दिन तपोभूमि बुला लिया। शुरू में तय हुआ था कि रोज आते-जाते रहेंगे, लेकिन पहले दिन यज्ञ में बैठने के बाद वापस जाने लगे तो गुरुदेव ने कहा—''आप महीने भर तक यहीं रहिए। पूरी तरह स्वस्थ होकर ही वापस जाएँ।''

श्यामलाल जी ने कहा—''घर के लोगों को इस बारे में बताने के लिए एक बार तो जाना पड़ेगा।'' कुछ पल रुककर वे हँसते हुए बोले—''उन लोगों को भी संतोष होगा कि रातभर खों-खों की आवाजें अब नहीं सुनाई देंगी।'' दोपहर तक श्यामलाल जी आवश्यक वस्त्र और बरतन, बिस्तर सहित तपोभूमि वापस आ गए। प्रतिदिन यज्ञशाला जाते और वहाँ नियत विधानों में भाग लेने के साथ गुरुदेव द्वारा बताई, तैयार की गई सामग्री से यज्ञ में चौबीस आहुतियाँ भी देते। दो सप्ताह तक यह सिलसिला चलता रहा। पंद्रहवें दिन घर के लोगों ने कहा—''अब आप वापस चलिए। आपके चेहरे की रंगत देखकर तो लगता है कि आप ठीक हो गए। नानूराम जी (वैद्य) भी आपको कल देखकर गए थे। वे भी यही बता रहे थे।''

श्यामलाल जी ने कहा—''पंडित जी (वे गुरुदेव को इसी संबोधन से पुकारते थे) जब तक अपने आप नहीं कहते, यहाँ से जाना ठीक नहीं होगा।'' यज्ञ में विशिष्ट आहुतियाँ देते हुए सत्ताईस दिन हो गए। गुरुदेव नानूराम जी के साथ मथुरा के जिला अस्पताल से डॉ० मोतीलाल को भी साथ लेकर आए। वैद्य जी और डॉक्टर, दोनों ने जाँचा-परखा, श्यामलाल जी पूर्ण स्वस्थ थे। उनकी साँस, बलगम या थूक और सीने में कहीं कोई विकार नहीं था। पूरी तरह नीरोग करार दिए जाने के तीन दिन बाद गुरुदेव श्यामलाल जी को अपने साथ रिक्शे में बैठाकर घर ले गए। ये गुरुदेव के ढाई मित्रों में से एक थे।

आर्षपद्धति से रोगोपचार का एक मामला सन् 1974 का है। तब भोपाल में सेवारत एक कार्यकर्त्ता बृजमोहन जी को विकट मनोरोग हो गया था। दधीचि के नाम से विख्यात यह कार्यकर्त्ता गायत्री परिवार के कार्यक्रमों में जाया करते थे और मंच को अपनी ओजस्वी वाणी तथा ठहाकों से जीवंत कर देते थे। अचानक पता नहीं क्या हुआ, वे गुम-सुम रहने लगे। गायत्री परिवार के कार्यक्रमों में जाना बंद कर दिया। दो, एक दिन बाद कार्यालय जाना भी छोड़ दिया। फिर घर में चुपचाप बैठे रहने लगे। बैठे-बैठे ही उन्माद उभरता और जोर-जोर से हँसते, अनर्गल वार्त्तालाप करते। बीच-बीच में स्वस्थ भी हो जाते। गुरुदेव को इसकी सूचना दी गई। आदेश आया कि उन्हें लेकर तुरंत शांतिकुंज आ जाएँ। उन्हें लाना भी समस्या थी। भारी-भरकम और बलिष्ठ काया। बहक जाएँ तो किसी के सँभाले न सँभलें। गुरुदेव ने इस बारे में भी निर्देश दिया कि किसी तरह मथुरा तक भिजवा दें। वहाँ से शांतिकुंज बुलाने की व्यवस्था हो जाएगी। दधीचि जी के परिवार में तब पत्नी के अलावा कोई और नहीं था।

आराम भी एक काम

भोपाल के परिजनों ने उन्हें मथुरा पहुँचा दिया। वहाँ से पंडित जी ने एक कार्यकर्त्ता को साथ बैठाकर दधीचि जी को शांतिकुंज भेज दिया। मथुरा से तब हरिद्वार रोडवेज की एक बस आती थी। जो सुबह पाँच-छह बजे यहाँ पहुँचती। उसी बस में दधीचि जी आए। कार्यकर्त्ता को बीच रास्ते में एकाध बार विचार आया कि दधीचि जी अपना आपा खो देंगे तो क्या करेंगे? विचार आते ही कार्यकर्त्ता ने गुरुदेव का स्मरण किया और मन शांत हो गया। सुबह बस स्टेंड पर उतरे और रिक्शे में बैठकर दोनों शांतिकुंज पहुँचे। तब छह-सात बजे का समय होगा। दधीचि जी अपने लिए नियत कक्ष में ठहरे ही थे कि गुरुदेव के पास से तुरंत ऊपर आने का संदेश आया। उस समय तक दधीचि जी ने मंजन आदि ही किया था। निर्देश मिलते ही वे ऊपर गए और गुरुदेव को प्रणाम किया। गुरुदेव ने कहा—''यह क्या हाल कर लिया है बृजमोहन!''

''माई माइंड हेज गोन।''—दधीचि जी ने गुरुदेव से अँगरेजी में कहा। फिर हिंदी में बोले—''अब मैंने काम-काज

भी बंद कर दिया है। आपका काम भी नहीं कर रहा। आगे भी नहीं करूँगा।''

''हाँ मत करना बेटा, किसी का काम मत करना।'' गुरुदेव ने कहा—''बहुत काम कर लिया। अब यहाँ मेरे पास सिर्फ एक ही काम करना।''

सुनकर दधीचि जी ने गुरुदेव की ओर देखा कि वे क्या कहने जा रहे हैं। वे अवाक् से थे-मुँह खुला ही रहा। जैसे अभी चिर-परिचित अट्टहास करते हुए हँस उठेंगे। गुरुदेव ने कहा—''मैं जब तक कहूँ, सिर्फ यहीं आराम करना। यह भी एक काम है अच्छा।''

इतना कहकर गुरुदेव ने अपनी अलमारी से इलायची के कुछ दाने और लौंग के टुकड़े दधीचि जी के हाथ पर रख दिए। अब जाओ अपना काम शुरू करो। नहा-धोकर तैयार हो जाओ। मैं तुम्हें नौ बजे बुलाऊँगा और बताऊँगा कि क्या करना है।

गुरुदेव का आदेश पाकर दधीचि जी धीरे-धीरे सीढ़ियाँ उतरते हुए नीचे आ गए। शांतिकुंज में वे करीब तीन सप्ताह रहे। गुरुदेव ने उन्हें श्वास लेने की कुछ खास विधियाँ बताईं और सिर में लगाने के लिए तेल दिया। फिर हवन, आरती में भी आने के लिए कहा। तीन सप्ताह बीतने के बाद दधीचि जी पहले की तरह स्वस्थ खिलखिलाते और अट्टहास करते हुए वापस लौट रहे थे।

साधना प्रयोगों के प्रतिबंध

गुरुदेव के सान्निध्य में रहकर इस तरह के विशेष उपचारों से स्वस्थ होने वालों के सैकड़ों प्रसंग हैं। ये प्रसंग निजी अनुभवों के दायरे में ही आते हैं। ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान के जरिए उन विधियों और प्रयोगों को विज्ञान की कसौटी पर भी खरा सिद्ध करना था। औपचारिक उद्घाटन और यज्ञशाला के प्रायोगिक स्वरूप को प्रकट करने से पहले गुरुदेव-माताजी ने भवन के भूमितल पर बने मंदिरों में गायत्री के चौबीस विग्रहों की प्राणप्रतिष्ठा की थी। यह कार्यक्रम सबसे पहले संपन्न किया गया और गिने-चुने लोग ही इसमें सम्मिलित हुए। जिन चौबीस साधकों ने समारोह में अर्चक के रूप में हिस्सा लिया था, उन्होंने चालीस दिन का एक अनुष्ठान किया था और पिछले चालीस घंटों से निराहार व्रत रखा था। कुछ अर्चकों ने वैदिक विधि से अनुष्ठान किया था तो कुछ ने तांत्रिक विधियों से। दोनों विधियों से अनुष्ठान करने वालों की संख्या आधी-आधी रही होगी। (क्रमशः)

ब्राह्मण का धर्म अपरिग्रह होता है। जो अपने लिए संचय करने लगे तो वह ब्रह्मतेज को समाप्त करने लगता है। ऐसे ही एक अपरिग्रही विद्वान थे—उदयन आचार्य। आचार्य उदयन भयानक कष्ट व अभावों में रहते थे, परंतु उन्होंने कभी अपने लिए किसी के आगे हाथ नहीं फैलाया था। उनके संयमित जीवन का कष्ट उनकी पत्नी भी साझा करती थीं। एक बार वे दोनों सप्ताह भर भूखे रहे, उनके वस्त्र बुरी तरह फट गए तो अपनी पत्नी की ऐसी दरिद्रावस्था, उनसे देखी न गई। उन्होंने राजा के पास जाकर उनसे कुछ आर्थिक सहायता माँगने का निर्णय लिया। ऐसा सोचकर दंपती यात्रा पर निकले। मार्ग में नदी पड़ी, परंतु उनके पास पार जाने के पैसे नहीं थे सो मल्लाह से बोले—''भैया! हम ब्राह्मण दंपती हैं। पार जाने के पैसे नहीं हैं, आप निःशुल्क पहुँचा दो, लौटते समय आपका शुल्क अदा कर देंगे।'' मल्लाह बोला—''सभी अपने को ब्राह्मण कहते हैं, पर ब्राह्मण तो इस राज्य में आचार्य उदयन ही हैं। कितने भी कष्टों में रहे, उन्होंने कभी राजा के आगे हाथ नहीं फैलाया है।'' यह सुनते ही पति-पत्नी वापस लौट पड़े व बोले—''स्वाभिमान की कीमत, दुनिया में सबसे ज्यादा है।''

आत्मसाधना से होता है आत्मसाक्षात्कार

इस संसार में ज्ञानी मनुष्य भी रहते हैं और अज्ञानी भी। ब्रह्मज्ञानी भी रहते हैं और मूढ़ भी। इस संसार में आस्तिक भी रहते हैं और नास्तिक भी। योगी भी रहते हैं और भोगी भी। ज्ञानी और अज्ञानी, ब्रह्मज्ञानी और मूढ़मति, योगी और भोगी, सभी इसी संसार में रहते हैं। सभी को भूख, प्यास, पीड़ा एवं वेदना का अनुभव होता है। उन सभी के भौतिक शरीर नष्ट होते हैं और वे सभी मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

बाह्य दृष्टि से दोनों एक समान ही दिखते हैं, पर वास्तव में आंतरिक दृष्टि से दोनों में आसमान और पाताल-सा असाधारण अंतर व्याप्त होता है। अज्ञानी, विद्याविहीन, भोगी और नास्तिक स्तर के लोग सभी प्रकार के भोगों का, भौतिक साधनों का उपभोग करते रहने के बावजूद भी दु:खी रहते हैं। अथाह भौतिक सुख-साधनों के बीच होते हुए भी उनके जीवन में सुख-शांति का सर्वथा अभाव होता है।

भौतिक साधनों, भोगों से क्षणिक व तात्कालिक सुख वे अवश्य पाते हैं, पर अगले ही पल वे फिर से दु:खी व निराश हो जाते हैं। वे फिर से अतृप्त हो जाते हैं। वे सुख-साधनों के होते हुए भी उन साधनों के समाप्त हो जाने या छिन जाने के अज्ञात भय से हमेशा भयभीत रहते हैं। रह-रहकर उनके मन में भय व निराशा के काले बादल घिर आते हैं। वे सुख-दु:ख पाप-पुण्य, शुभ-अशुभ, अच्छे-बुरे कर्मों के बंधन में बँधे रहते हैं। उनके हर कर्म उन्हें बाँधने वाले होते हैं।

ऐसे लोग मृत्यु की कल्पना मात्र से रह-रहकर काँप उठते हैं। मृत्यु की याद, मृत्यु की कल्पना उन्हें हर पल रुलाती है। मृत्यु से पूर्व न जाने वे कितनी बार मृत्यु के भय से भयभीत होते हैं। ऐसे लोग हर पल सुख-दु:ख और आशा-निराशा के झूले पर झूलते रहते हैं। उनके लिए यह जीवन अँधेरी, काली व डरावनी रात्रि है, जिसमें वे हर पल मरते और जीते हैं, पर प्रश्न उठता है कि जो तत्त्वज्ञ हैं, ज्ञानी हैं उनको यह दुनिया कैसी दिखाई पड़ती है ?

तैत्तिरीय उपनिषद् (3.6.1) में वेद के एक ऋषि ने अपनी अनुभूति को इन शब्दों में प्रकट किया है— ''यह विश्व आनंद से उत्पन्न होता है, आनंद में टिका रहता है और आनंद में ही पुन: लीन हो जाता है।''

कहने का तात्पर्य यह है कि जिन्हें आत्मज्ञान नहीं है वे दु:ख भोगते हैं, पर तत्त्वद्रष्टा व्यक्ति नित्य ईश्वरीय आनंद का अनुभव करते हैं; क्योंकि जो ज्ञानी हैं, ब्रह्मज्ञानी हैं, योगी हैं, उनकी तो दुनिया ही अलग है। इस संसार में रहते हुए भी उनका संसार अलग होता है।

इस दुनिया में रहते हुए वे बाहरी जगत् में दिखते अवश्य हैं, पर उनका आंतरिक जगत् बिलकुल ही अलग है। उनका अपना अलग ही संसार है, जिसमें वे पल-पल परम आनंद की अनुभूति पाते हैं। भोगों के बीच दीखते हुए भी वे भोगों से दूर होते हैं। भोगों के बीच रहते हुए भी वे अभोगी होते हैं, कामनाओं के बीच रहते हुए भी वे अकामी होते हैं।

वे कर्म करते हुए भी अकर्मी होते हैं; क्योंकि उनके हर कर्म निष्काम होते हैं, उनके हर कर्म ईश्वर को समर्पित होते हैं। उनके हर कर्म फलासक्ति और कर्त्तापन की भावना से रहित होते हैं। इसलिए भोगों के प्रति उनकी कोई आसक्ति नहीं होती, कामनाओं के प्रति उनकी कोई आसक्ति नहीं होती, संसार के प्रति उनकी कोई आसक्ति नहीं होती। वे काम, क्रोध, मद, मोह, दंभ, दुर्भाव आदि से सर्वथा मुक्त होते हैं। साधारण दीखते हुए भी वे असाधारण होते हैं; क्योंकि उनकी चेतना अपने शिखर पर स्थित होती है।

उनकी आत्मा में परमात्मा जीवंत और जाग्रत होते हैं। मृत्यु भी उनके लिए महोत्सव होती है; क्योंकि उन्हें यह परम सत्य ज्ञात होता है कि आत्मा नित्य, सनातन और पुरातन है। वे जानते हैं कि आत्मा अजर-अमर और अविनाशी है और मैं शरीर नहीं आत्मा हूँ। शरीर तो आत्मा का वस्त्र मात्र है। मैं तो ईश्वर का दिव्य अंश हूँ, फिर मृत्यु का भय कैसा? मृत्यु तो शरीर की होती है, वस्त्र की होती है, फिर मरने से क्या डरना?

इस परम सत्य की अनुभूति होने के कारण ही उनके लिए जीवन का हर पल, हर क्षण ही उत्सव है, महोत्सव है और जीवन ही क्यों उनके लिए तो मृत्यु भी महोत्सव है। मृत्यु भी मरण नहीं, वरन मंगल त्योहार है। इसलिए वे मृत्यु का आलिंगन करते हुए भी आनंदित होते हैं। वे मृत्यु का भी साक्षात्कार कर पाने में समर्थ होते हैं।

उनके लिए यह संसार परमात्मा की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है। सागर की लहरों में, सरिता की धाराओं में, उषाकालीन सूरज की लाली में, चंद्रमा की चाँदनी में, अंतरिक्ष में, जगमगाते सितारों में, रंग-बिरंगे पुष्पों में उन्हें परमात्मा का ही सौंदर्य दीख पड़ता है। आसमान में घिर आए काले-काले बादलों में उन्हें ईश्वर का सौंदर्य दीख पड़ता है। तभी तो 7 वर्ष की अवस्था में श्रीरामकृष्णदेव आसमान में घिर आए बादलों के बीच से उड़ते हुए पक्षियों के समूह को देखकर भाव समाधि में डूब गए थे और मूर्च्छित होकर गिर पड़े थे।

परमात्मा का यह दिव्य सौंदर्य मन या बुद्धि की आँखों से, दृष्टि से नहीं देखा जा सकता। सारे संसार में बिखरे हुए सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, निराकार ब्रह्म के सौंदर्य को देखने के लिए तो आत्मदृष्टि, ब्रह्मदृष्टि चाहिए, जो आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान होने पर ही खुल पाती है। सतत निरंतर साधना, भगवद्ध्यान, भगवद्भजन, सुमिरन, स्मरण, स्वाध्याय, सेवा आदि से जब आत्मा के ऊपर चढ़े हुए माया का, अज्ञान का, अविद्या का, आवरण समाप्त हो जाता है तब उस आत्मा में अंश रूप में, बीज रूप में व्याप्त परमात्मचेतना सक्रिय हो उठती है, जाग्रत हो उठती है, जीवंत हो उठती है और आत्मा परमात्मा के परम प्रकाश से प्रकाशित हो उठती है।

उस अवस्था में साधक की आत्मा में सत्यस्वरूप, प्रेमस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, सत्-चित्-आनंदस्वरूप परमात्मा प्रकट हो उठते हैं। तब आत्मा में परमात्मा खेलने लगते हैं, अपनी दिव्य लीलाएँ करने लगते हैं और साधक तो उनकी लीला का, क्रीड़ा का, एक उपकरण मात्र बनकर रह जाता है। साधक का शरीर तो एक रंगमंच मात्र होता है, जिस पर बैठी आत्मा परमात्मा के इशारे पर नाचती जाती है और परमात्मा के परम आनंद की अनुभूति में पल-पल मदहोश हुई जाती है।

साधक के अंदर तब एक महाआकाश उतर आता है, जिसमें परमात्मा जुगनू बन, सितारे बन चमकते रहते हैं। अपनी आत्मा में परमात्मा की इस रूप में पल-पल हो रही दिव्य अनुभूति से साधक खुली नेत्रों से भी गहन ध्यान में, भाव-समाधि में डूबने-उतरने लगता है। साधक का मन मिट जाता है या यों कहें कि परमात्मा का चिंतन करते-करते मन परमात्मा में वैसे ही मिल जाता है, मिट जाता है, जैसे सागर में नमक का पुतला मिट जाता है और तब स्वयं भी सागर बन जाता है।

साधक के चित्त की, साधक की चेतना की यह वह अवस्था है, जिसमें उसे सर्वत्र परमात्मा-ही-परमात्मा दीख पड़ते हैं; क्योंकि उसके अंदर अब परमात्मा जो उतर गए हैं, उसके अंदर परमात्मा जो जीवंत और जाग्रत हो गए हैं और उसके अंदर ज्ञान का सूरज जो उग आया है। उसकी आत्मचेतना परमात्मा से चैतन्य जो हो गई है। इसी को शब्द देते हुए संत कबीर ने कहा है—

हकीम लुकमान से लोगों ने पूछा— "वे इतने बुद्धिमान कैसे बने ?" तो वे बोले—"मुझे बुद्धि मूर्खों से मिली।" लोगों ने पूछा—"कैसे ?"

लुकमान बोले—"मैंने उनके जीवन को बारीकी से देखा व उनके जीवन में जो छोड़ने लायक लगा, उसे अपने जीवन में भी छोड़ दिया। प्रेरणा प्राप्त करने के लिए संसार के सभी मार्ग उपलब्ध हैं।"

लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।
लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल॥

यही वह अवस्था है जिसमें साधक हर्ष-विषाद, मान-अपमान आदि द्वंद्वों से परे होकर परम आनंद में स्थित हो जाता है। इस संदर्भ में संत कबीर कहते हैं—

आतम अनुभव जब भयो, तब नहिं हर्ष विषाद।
चित्र दीप सम हैं रहे, तजिकर वाद-विवाद॥

अर्थात जब अपने आत्मस्वरूप का अनुभव हो जाता है, तब हर्ष-शोक नहीं रह जाते। ऐसे लोग वाद-विवाद त्यागकर चित्र के दीपक की भाँति स्थिर हो जाते हैं।

यदि हम भी इस परम आनंद की अवस्था में स्थित होना चाहते हैं तो हमें भी इंद्रियों की दासता से मुक्त होना होगा। हमें शरीर, मन, बुद्धि व इंद्रियों के तल से ऊपर उठकर आत्मतल पर अवस्थित होना होगा। क्योंकि हम भले ही शास्त्रों में यह पढ़ें कि मैं ईश्वर अंश हूँ, परमात्मा हमारे भीतर है, परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है, सत्-चित्-आनंद स्वरूप ही हमारा सच्चा स्वरूप है, पर जब तक इस सत्य को हमने मात्र बौद्धिक रूप से ही समझा है, तब तक उससे हमें कोई लाभ नहीं मिलता। जब तक हमें स्वयं के भीतर यह अनुभूति नहीं होती, तब तक शास्त्रों में लिखी गई बातों का हमारे लिए क्या प्रयोजन?

शास्त्रों में लिखी बातों को पढ़ने-रटने या कहने मात्र से कोई लाभ नहीं। लाभ तो तभी है, जब हम शास्त्रों में कही गई इन बातों को जीकर स्वयं के भीतर परमात्मा की अनुभूति प्राप्त कर पाएँ और इसके लिए हमें आत्मअनुसंधान, आत्मसाक्षात्कार का मार्ग अपनाना ही होगा। श्रीरामकृष्ण परमहंस ने इस विषय में एक बहुत ही सुंदर दृष्टांत देते हुए कहा है—''साधना करने पर भगवत्कृपा से साधक को पूर्णता प्राप्त होती है। प्रयत्न अनिवार्य है, तभी साधक ईश्वर को देख सकता है और उनके आनंद का रस चख सकता है। यदि किसी ने सुना है कि कहीं पर सोने से भरा हुआ घड़ा जमीन में दबा पड़ा है तो वह तत्काल दौड़कर वहाँ पहुँच जाता है और खोदना शुरू कर देता है। खोदते-खोदते वह पसीने से नहा जाता है। काफी परिश्रम के बाद जब उसे लगता है कि कुदाल किसी चीज से टकराई है तो वह कुदाल फेंककर घड़े की खोज करता है। घड़े को देखते ही वह आनंद से नाचने लगता है। फिर वह घड़ा निकालता है और सोने के सिक्के पाकर निहाल हो जाता है।''

अपने अंदर परमात्मा की अनुभूति पाकर हम भी निहाल हो सकते हैं। बस, शर्त यही है कि हम आत्मसाधना, आत्मअनुसंधान के द्वारा आत्मसाक्षात्कार पाने को आज और अभी से ही तैयार और तत्पर हो जाएँ। तभी उस अपरोक्ष अनुभूति को प्राप्त कर पाना संभव हो पाता है। ❑

समर्थ गुरु रामदास शिवाजी को मुगलों के विरुद्ध युद्ध में अग्रणी होने का श्रेय देना चाहते थे और इसके निमित्त वे उन्हें कभी खाली न जाने वाली भवानी तलवार भी माँ दुर्गा से दिलवाना चाहते थे, पर अनुदान देने से पूर्व उनकी पात्रता परख लेना आवश्यक समझते थे।

समर्थ ने एक दिन अचानक शिवाजी से कहा कि उनके पेट में भयंकर शूल उठा है। प्राण बचाने का एक ही उपाय है कि सिंहनी का दूध मिले। गुरुभक्त और साहस के धनी शिवाजी उसे लाने के लिए तत्काल चल पड़े। माँद मे सिंहनी बैठी बच्चों को दूध पिला रही थी।

शिवाजी ने कहा—''माता आप मेरे उद्देश्य और संकल्प की उत्कृष्टता पर विश्वास करें तो थोड़ा दूध दे दें।'' सिंहनी ने पैर चौड़े कर दिए और दूध निकाल लेने दिया। पात्रता की परख हो गई। परिणामस्वरूप समर्थ गुरु रामदास ने शिवाजी की सफलता के लिए सब कुछ दाँव पर लगा दिया।

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार— 162

पुनर्जन्म पर शोध

किसी कार्य को करने वाले के मनोभावों का प्रभाव निश्चित रूप से उस कार्य के परिणाम में दिखाई देता है। कार्य को करने वाला व्यक्ति अपने भीतर जिस आस्था, विश्वास, प्रेरणा, मूल्य, परंपरा आदि से जुड़ा हुआ होता है, तो ये उसके कार्य की गुणवत्ता, कार्य संतुष्टि की भावना और सहकर्मियों के लिए प्रेरणा उत्पन्न करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कार्य-संस्कृति का सिद्धांत इसी तथ्य पर आधृत है।

कार्य-संस्कृति का तात्पर्य ही होता है किसी कार्य को करने वाले की मनोवृत्ति को निर्धारित एवं प्रभावित करने वाला वातावरण। किसी संस्था, संस्थान, संगठन आदि में कार्यों का स्तर एवं परिणाम में वहाँ की कार्य- संस्कृति की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है, परंतु यह जानना भी जरूरी है कि कार्य-संस्कृति का निर्माण किसी लिखित नियम अथवा प्रावधान, अनुशासन जैसे बाह्य कारकों से नहीं होता है, अपितु यह लोगों के जीवन में अंतर्निहित मूल्यों, विश्वासों, आदर्शों, परंपराओं, दृष्टिकोणों जैसे अलिखित और अनिर्दिष्ट नियमों के आधार पर निर्धारित होता है।

इन मूल्यों, विश्वासों के, कार्य-संस्कृति के संबंध एवं प्रभाव को जानने-समझने की दिशा में पहल करते हुए देव संस्कृति विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग के अंतर्गत एक विशिष्ट शोधकार्य संपन्न किया गया है। इस शोध अध्ययन में वैज्ञानिक एवं प्रायोगिक रीति से व्यक्ति के आस्था-विश्वास और मूल्योन्मुखता के कार्य-संस्कृति से अंतर्संबंध एवं प्रभाव का अध्ययन एवं विवेचन किया गया है।

वर्ष 2016 में यह शोध अध्ययन शोधार्थी मनीप गुप्ता द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति जी के विशेप संरक्षण एवं प्रो० हेमाद्रि साव जी के निर्देशन में पूरा किया गया है। इस शोध का विषय है—**'ए स्टडी ऑफ दि इफेक्ट ऑफ रीइन्कार्नेशन बिलिव्स ऑन वर्क कल्चर'** अर्थात कार्य-संस्कृति पर पुनर्जन्म में विश्वास के प्रभाव का अध्ययन।

शोध विषय के प्रयोगात्मक अध्ययन के लिए शोधार्थी द्वारा आकस्मिक प्रतिचयन विधि द्वारा तीन सौ कर्मचारियों का चयन किया गया। इन सभी की उम्र का मानक 20 से 60 वर्ष के मध्य रखा गया तथा अधिकांश हरिद्वार जिले (उत्तराखंड राज्य) के विभिन्न संस्थानों में कार्यरत थे।

सभी चयनितों में से शोधार्थी द्वारा पुनर्जन्म में विश्वास करने वाले और पुनर्जन्म में विश्वास न करने वालों को 150-150 के दो समूहों में विभाजित किया गया। इन दोनों समूहों में समान रूप से 50 स्वरोजगारी, 50 सरकारी कर्मचारी एवं 50 गैरसरकारी कर्मचारी के रूप में तीन समूह का निर्माण किया गया।

अध्ययन में शोध उपकरण के रूप में जिनका उपयोग किया गया, वे हैं—(1) स्वयं शोधार्थी द्वारा निर्मित—चेक लिस्ट ऑफ रीइन्कार्नेशन बिलिव्स एवं (2) शोधार्थी द्वारा निर्मित—ए क्वेश्चनआॅर ऑफ वर्क कल्चर। प्रथम उपकरण के माध्यम से शोधार्थी द्वारा पुनर्जन्म में विश्वास करने वाले और विश्वास न करने वाले कर्मचारियों का चयन किया गया तथा दूसरे उपकरण के माध्यम से कर्मचारियों की कार्य आवृत्तियों एवं संगठन के आदर्श व सिद्धांत संबंधी महत्त्वपूर्ण आँकड़ों को प्राप्त किया गया।

प्रयोग से प्राप्त आँकड़ों एवं तथ्यों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर यह पाया गया कि पुनर्जन्म में विश्वास करने वाले तथा पुनर्जन्म में विश्वाम नहीं करने वाले की कार्य-संस्कृति में पर्याप्त अंतर है। साथ ही यह भी देखा गया कि पुनर्जन्म में विश्वास का कार्य-संस्कृति पर सार्थक एवं सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इस अध्ययन के परिणामों से यह स्पष्ट है कि कार्य-संस्कृति और हमारे विश्वासों, आस्थाओं, मूल्यों में गहरा अंतर्संबंध होता है।

शोधार्थी द्वारा किया गया यह प्रयास वर्तमान संदर्भ में अत्यंत महत्त्वपूर्ण और उपयोगी है; क्योंकि वर्तमान में जो कार्य-संस्कृति की सच्चाई है, वह यह है कि सामाजिक परिवेश अत्यंत उलझा हुआ और पेचीदा है, जीवनमूल्य नैतिकताविहीन हैं, व्यक्ति आधुनिकता की चादर में लिपटा असंस्कृत, स्वार्थी, भ्रष्ट, महत्त्वाकांक्षी, दंभी और समाज

अथवा अन्यों के कल्याण के प्रति पूर्णरूपेण उदासीन हो गया है।

इन सबका सीधा असर कार्य-संस्कृति को कमजोर बनाने वाला तथा उसमें नकारात्मक प्रभाव उत्पन्न करने वाला है। कार्य-संस्कृति पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों का समाधान मानवीय मनोविज्ञान में सन्निहित है। मनुष्य एक विचारशील प्राणी है और उसके विचारों के पीछे उसका अपना नजरिया, विश्वास, आदर्श और परिवेश का प्रभाव कार्य करता है।

कहा भी जाता है कि प्रत्येक विचार विश्वास नहीं होता, परंतु प्रत्येक विश्वास एक विचार होता है। यदि मनोवैज्ञानिक तरीके से व्यवहार के पीछे विचारों को जिम्मेदार माना जाए तो विचारों के पीछे विश्वास मुख्य कारण होता है, इस तरह विश्वास ही मानव व्यवहार का मुख्य कारण होता है और विश्वास को ही मानव व्यवहार का मूल आधार कहा जाएगा।

विश्वास ही मनुष्य के कार्य, व्यवहार, चिंतन और चरित्र को प्रभावित करता है और मेंटल एटीट्यूड को गढ़ता है। लोकजीवन में मान्यता है कि दुनिया विश्वास पर टिकी है। भारतीय धर्म सिद्धांतों में कहा गया है कि जीवन की नींव श्रद्धा और विश्वास से बनी है। सारा संसार विश्वास से चलता है, धर्म श्रद्धा से और विज्ञान तर्क से चलायमान है। जिस प्रकार जीवन में श्वास होता है, उसी तरह समाज और संसार में विश्वास का स्थान है।

विश्वास के सिद्धांत को कार्य-संस्कृति के संदर्भ में देखा जाना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इस अध्ययन में विश्वास सिद्धांत के रूप में पुनर्जन्म के सिद्धांत को सम्मिलित किया गया है। पूरी दुनिया की बहुत बड़ी आबादी इस सिद्धांत पर विश्वास करती रही है। भारत में अनेक तरह के विश्वासों में एक पुनर्जन्म में विश्वास भी प्रमुख और महत्त्वपूर्ण है।

पुनर्जन्म का संबंध जन्म-मरण से संबद्ध है। हिंदू धर्म में इस सिद्धांत के आधार पर कर्मफल सिद्धांत की अवधारणा प्रस्तुत की गई है। पुनर्जन्म में विश्वास करने का तात्पर्य ही है कर्मफल सिद्धांत में विश्वास। पुनर्जन्म के इस सिद्धांत को सभी भारतीय प्राचीन ग्रंथों, जैसे—वेद, उपनिषद्, स्मृति, पुराण, गीता, योग में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इस सिद्धांत की मान्यता है कि शरीर की मृत्यु ही जीवन का अंत नहीं है, अपितु यह जन्म-जन्मांतर की एक शृंखला है। जीवन की चौरासी लाख अथवा कोटि (प्रकार) की योनियों में जन्म लेने की बात इसमें कही गई है। जीव विभिन्न योनियों में जन्म लेता है और कर्मों को भोगता है।

कर्मफल का यह भारतीय सिद्धांत एवं इसके प्रति विश्वास लोगों में स्वयमेव कर्म, व्यवहार, चिंतन एवं चरित्र की नियामक शक्ति के रूप में अंतर्निहित रहता है। प्रारंभ से ही व्यक्ति, समाज और संस्कृति की नियंत्रक एवं प्रेरक शक्ति के रूप में पुनर्जन्म के विश्वास का प्रमुख स्थान रहा है। इस सिद्धांत में विश्वास का सीधा संबंध समांतर रूप से हमारी कार्य-संस्कृति पर भी रहा है। प्राचीनकाल से ही देखें तो सादगी एवं स्वस्थ जीवनशैली को ही श्रेष्ठतम माना जाता रहा है।

भारतीय धर्मशास्त्र और दर्शनशास्त्र में पुनर्जन्म, कर्मफल का सिद्धांत और इससे जुड़ी जीवनशैली की विस्तृत चर्चा उपलब्ध होती है। हिंदू धर्म के मानने वालों में आज भी इस सिद्धांत के प्रति अटूट श्रद्धा एवं विश्वास है। विश्व में और भी धर्म के लोग पुनर्जन्म के सिद्धांत में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से विश्वास करते हैं।

पुनर्जन्म के सिद्धांत में विश्वास का सबसे महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक पक्ष यह है कि व्यक्ति और समाज के चिंतन एवं व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन उत्पन्न कर श्रेष्ठतम जीवन जीने के लिए आवश्यक मूल्य और संस्कृति का निर्माण करता है। इस सिद्धांत में विश्वास करने वालों के समक्ष जीवन के कठिन-से-कठिन दौर में भी आध्यात्मिक और शांतिपूर्ण जीवन जीने का अवसर सुलभ होता है।

इस शोध अध्ययन के माध्यम से शोधार्थी ने भी पाया कि पुनर्जन्म में विश्वास रखने का व्यक्ति के सोचने, कार्य करने और व्यवहार पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। साथ ही व्यक्ति में अपनी जिंदगी, परिवेश और समाज के प्रति सामंजस्य की क्षमता विकसित होती है। फलस्वरूप ऐसे लोग, जब किसी संस्थान अथवा संगठन में कार्य करते हैं तो निश्चित रूप से वहाँ की कार्य-संस्कृति भी प्रभावित होती है।

आज जब कार्य-संस्कृति को आदर्श और गुणवत्तापूर्ण बनाने की दिशा में व्यापक मंथन और प्रयास किए जा रहे हैं, ऐसे में आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण है कि लोगों में विश्वास, मूल्य और आदर्श के स्रोत तलाश कर वहाँ की कार्य-संस्कृति में सकारात्मक परिवर्तन लाने की पहल की जाए। ❑

मानवीय मेधा को चुनौती देते धरती के अजूबे

इस विश्व में कई ऐसे स्थल हैं, जो अपनी विचित्रता के कारण इनसान का ध्यान आकर्षित करते हैं और साथ ही यह भी सोचने के लिए मजबूर करते हैं कि इस धरती पर कितना कुछ है, जिससे हम अभी तक परिचित नहीं। साथ ही प्रकृति में निहित सूक्ष्म रहस्यों की पहेलियों को सुलझाने की चुनौती भी तथाकथित बुद्धिमान मानव के हिस्से आ जाती है। प्रस्तुत हैं कुछ ऐसे ही धरती के अजूबे, जो स्वयं में अद्वितीय हैं, विलक्षण हैं तथा जिज्ञासु इनसान के लिए विचार का विषय भी हैं।

फिलीपीन के बोहोल द्वीप में स्थित **चॉकलेट हिल्स प्रकृति की अद्भुत आकृतियाँ हैं।** शंकु आकार की ये पहाड़ियाँ, पूरी तरह से घास से ढकी हुई हैं, जो बारिश में हरी-भरी होती हैं तो गरमियों में जब घास सूख जाती है, तो इनका रंग गहरा भूरा, चॉकलेटी हो जाता है, जिस कारण इन्हें चॉकलेट हिल्स कहा जाता है। अपनी विलक्षणता के कारण इन्हें यूनेस्को द्वारा विश्व धरोहर स्थल में शामिल किया गया है।

इनके साथ स्थानीय परंपरा में कई तरह की किंवदंतियाँ भी जुड़ी हुई हैं। एक तो यह कि एक बार दो दैत्य आपस में मिट्टी व पत्थर से युद्ध कर रहे थे। उनका युद्ध लंबा चला, जिसके चलते ये पहाड़ियाँ खड़ी हो गईं। दूसरी किंवदंती के अनुसार, एक विशालकाय दैत्य एक इनसानी लड़की के प्यार में पड़ गया और जब उसकी मृत्यु हुई तो इसके दु:ख में वह बहुत रोया और जहाँ उसकी आँसुओं की बूँदें गिरीं, वहाँ ये पहाड़ियाँ बन गईं। जबकि वैज्ञानिकों का मानना है कि ये लाइमस्टोन के ढेर पर जमी मिट्टी व उन पर उगी घास का परिणाम हैं, जो कभी समुद्र का हिस्सा थीं, जो लाखों वर्षों के दौर में भूगर्भीय उथल-पुथल के बीच विकसित होते-होते इस रूप में आ गईं।

जो भी हो, विश्व की ये अद्वितीय पहाड़ियाँ निश्चित रूप से स्वयं में प्रकृति की पहेलियाँ हैं, जिनका रहस्यमयी स्वरूप दर्शकों को चकित करता है। आश्चर्य नहीं कि इनको विश्व का अनूठा आश्चर्य कहा जाता है।

ये पहाड़ियाँ 50 वर्ग किलोमीटर के दायरे में फैली हुई हैं, जो 30 मीटर से लेकर 120 मीटर की ऊँचाई लिए हुए हैं। इनकी कुल संख्या 1800 के आस-पास है। इन पहाड़ियों पर चढ़ना संभव नहीं, किंतु कुछ दर्शनीय स्थलों से इनके दिग्दर्शन किए जा सकते हैं, जहाँ लगभग 200 सीढ़ियाँ चढ़ते हुए ऊपर पहुँचा जाता है। यहाँ से सूर्योदय का दृश्य अत्यंत दर्शनीय रहता है।

मेक्सिको के सिएरा की नेका पहाड़ के करीब 984 फीट नीचे विशाल खंभों के रूप में जिप्सम के क्रिस्टलों से **लैंस क्रिस्टल गुफा** स्वयं में एक अद्वितीय प्राकृतिक गुफा है। मालूम हो कि जिप्सम एक बेशकीमती क्रिस्टल है, जिसका उपयोग कपड़ा, सीमेंट व कृषि उद्योग में किया जाता है। यह बेहतरीन कैल्सियम खाद का स्रोत भी है।

माना जाता है कि यह गुफा 5 लाख वर्ष के भौगोलिक परिवर्तन की निर्बाध प्रक्रिया के अंतर्गत विकसित हुई है, जो हजारों वर्षों तक जलमग्न रही, लेकिन अभी इसमें पानी निकाला गया है व यह एक गुफा का रूप लिए हुए है। हालाँकि यह आम पर्यटकों के लिए सुलभ नहीं है, विशेष स्वीकृति व विशिष्ट तैयारी के साथ ही इसमें प्रवेश किया जा सकता है।

इसमें प्रवेश मृत्यु के मुख में प्रवेश करने जैसा माना जाता है; क्योंकि यहाँ तापमान बहुत उच्च (47 से 58 डिगरी सेंटीग्रेट) रहता है, साथ ही नमी भी लगभग 100 प्रतिशत के आस-पास ही रहती है। विशेष प्रकार की वर्दी व उपकरणों के सहारे ही कुछ मिनटों के लिए इसमें प्रवेश किया जा सकता है, साथ ही बीच में एक भी पैर फिसलने पर नीचे खाई में गिरने का खतरा रहता है, जिस पर फिर बचाव कार्य करना असंभव प्राय: माना जाता है।

इस गुफा का पता सन् 2000 में एक खुदाई अभियान के दौरान चला था। इसमें जिप्सम के 13 से 20 फीट लंबे

खंभे दीवारों व फर्श पर अटे पड़े हैं, कुछ तो 36 फीट लंबे व 3 फीट तक चौड़े हैं।

डोर टू हेल तुर्कमेनिस्तान की राजधानी अश्काबात से 260 किमी दूर, काराकुम रेगिस्तान के दरवेज गाँव में स्थित **एक आग से धधकता गड्ढा है, जिसमें लगभग 50 वर्षों से आग लगी हुई** है। इसकी सुनहरी चमक रात को मीलों दूर से देखी जा सकती है। स्थानीय लोगों ने इसे डोर टू हेल अर्थात नरक का दरवाजा नाम दिया है।

माना जाता है कि सन् 1970-71 में रूस के तेल खुदाई अभियान के दौरान यहाँ संयोग से एक गैस का भंडार मिला। तब यहाँ मिट्टी के टूटने से गड्ढा बन गया, जिसमें विषाक्त मीथेन गैस रिसने लगी। अनुमान था कि इसको आग लगाने पर यह कुछ सप्ताह में जलकर समाप्त हो जाएगी, किंतु पचास वर्ष से अधिक समय के बाद भी यह गड्ढ़ा अभी सुलग ही रहा है और अभी इसके बंद होने के कोई आसार नहीं दिख रहे।

सन् 2013 में कनाडा के जाँबाज अन्वेषक जॉर्ज कोरोनिस इसमें प्रवेश करने वाले पहले मानव बने। नेशनल जियोग्राफिक के साथ मिलकर डेढ़ वर्ष की तैयारी के बाद वे इस सुलगते गड्ढे में उतरे, जहाँ पर उन्होंने मिट्टी के नमूने लिए, जिसमें विशिष्ट प्रकार के जीवाणुओं को पाया गया, जो अन्यत्र आस-पास कहीं धरती पर मौजूद नहीं थे। यह गड्ढा 69 मीटर चौड़ा व 30 मीटर गहरा है।

पर्यावरण एवं लोगों के स्वास्थ्य, दोनों दृष्टि से इसके प्रतिकूल प्रभाव को देखते हुए तुर्कमेनिस्तान के राष्ट्रपति ने विशेषज्ञों से इसकी आग को बुझाने के उपाय खोजने का आदेश दिया है। जब तक यह बंद नहीं होता, तब तक मीथेन गैस से सुलगता यह विशाल अखंड धुआँ लोगों के लिए एक कौतुक का विषय तो है ही।

अफ्रीका का सहारा रेगिस्तान विश्व का सबसे विस्तार लिए हुए रेगिस्तान है, जो स्वयं में कई रहस्यों को समेटे हुए है, जिसमें एक है इसके **बीचोंबीच 50 किमी का व्यास लिए गोलाकार रिचट संरचना, जिसे सहारा की आँख भी** कहा जाता है। यह स्वयं में एक अबूझ पहेली की तरह है, जिससे स्थानीय लोग स्वयं कभी परिचित नहीं थे; क्योंकि यह संरचना केवल आकाश से ही देखी जा सकती है।

सन् 1960 के दशक में नासा के अंतरिक्ष अभियान के दौरान जब वे धरती पर गिरने वाले धूमकेतुओं से बने गड्ढों की खोज कर रहे थे, तो सहारा रेगिस्तान के बीचों-बीच यह अद्भुत संरचना दिखी। यह नीली आँख की तरह दिखती है, जो इतनी बड़ी है कि आसमान से भी साफ-साफ दिखाई देती है। यह गोलाकार संरचना तीन समानांतर वृत्त लिए हुए है, जिनमें भिन्न-भिन्न प्रकार की मिट्टी, चट्टानों व भूगर्भीय अवशेष हैं, जिन्हें 2 करोड़ वर्ष पुराना माना जा रहा है।

अभी भी यह संरचना एक रहस्य ही है, जिसे वैज्ञानिक सुलझाने में लगे हुए हैं। कुछ तो इसे एलियन्स का कार्य तक बता रहे हैं। इस तरह धरती पर अभी भी बहुत चीजें ऐसी हैं, जो स्वयं में रहस्यों को समेटे हुए हैं तथा मनुष्य के लिए आश्चर्य का विषय हैं तथा जिज्ञासु मानवीय मन के लिए चुनौती भी, जिनके रहस्य के अनावरण में वह सतत प्रयासरत है। ❑

उपासना के साथ जीवन-साधना और लोक-मंगल की आराधना को भी संयुक्त रखने का निर्देश है। पूजा उन्हीं की सफल होती है, जो व्यक्तित्व और प्रतिभा को परिष्कृत करने में तत्पर रहते हैं, साथ ही सेवा-साधना को, पुण्य-परमार्थ को सींचने, खाद लगाने में भी उपेक्षा नहीं करते। त्रिपदा गायत्री में जहाँ शब्द गठन की दृष्टि से तीन चरण हैं, वहीं साथ में यह भी अनुशासन है कि धर्मधारणा और सेवा-साधना का खाद-पानी भी उस वटवृक्ष को फलित होने की स्थिति तक पहुँचाने के लिए ठीक तरह सँजोया जाता रहे।

—परमपूज्य गुरुदेव

श्रद्धा के केंद्र बदलते हैं आंतरिक गुणों के अनुसार

(श्रीमद्भगवद्गीता के श्रद्धात्रयविभागयोग नामक सत्रहवें अध्याय की चौथी किस्त)

[इससे पूर्व की किस्त में श्रीमद्भगवद्गीता के सत्रहवें अध्याय के तीसरे श्लोक की व्याख्या प्रस्तुत की गई थी। इस श्लोक में श्रीभगवान अर्जुन से कहते हैं कि सभी मनुष्यों की श्रद्धा उनके अंत:करण के अनुरूप होती है। मनुष्य श्रद्धामय है। इसलिए जो जैसी श्रद्धावाला है, वही उसका स्वरूप है अर्थात वही उसकी निष्ठा है। स्वरूप तो सभी प्राणियों का परमेश्वर की अभिव्यक्ति का है, परंतु संग के अनुसार, मानसिकता के अनुरूप व्यक्ति-व्यक्ति में भिन्न-भिन्न तरह के गुणों की प्रधानता हो जाती है और फिर उसका अंत:करण भी वैसा ही बन जाता है। उसे ही श्रीभगवान सात्त्विकी, राजसी और तामसी कहकर के पुकारते हैं। यह जो वचन है, यह अध्यात्म के संपूर्ण क्षेत्र पर लागू होता है। अध्यात्म के क्षेत्र में जितनी भी शक्तियाँ हैं, ताकतें हैं, विभूतियाँ हैं—उन सबका आधार एक ही शक्ति है और उस शक्ति का नाम श्रद्धा है। लोग मंत्र एक जैसा ही जपते हैं, उनके पूजा-उपासना के तरीके भी एक जैसे ही होते हैं, गुरु भी उनके एक ही होते हैं, परंतु तब भी उनके प्रयासों के परिणाम भिन्न हो जाते हैं और यह अंतर मनुष्य की श्रद्धा के आधार पर आता है।

यह अंतर इस आधार पर आता है कि व्यक्ति के अंत:करण में स्थापित निष्ठा कैसी है ? इसीलिए बुद्ध के साथ संपूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले आनंद को समाधि का लाभ नहीं मिल पाता; जबकि मक्खलिगोशाल उनको क्षणभर निहारने पर ही निहाल हो जाता है। इसीलिए श्रीभगवान इस श्लोक में यही कहते हैं कि मनुष्य श्रद्धाप्रधान है। जैसी जिसकी श्रद्धा होगी, वैसा ही उसका रूप होगा। उससे जो प्रवृत्ति होगी, वह श्रद्धा के अनुसार ही होगी। जो भी मनुष्य आत्मकल्याण के मार्ग का पथिक होता है, उसकी श्रद्धा सात्त्विक ही होती है। इसके विपरीत जिसकी श्रद्धा सांसारिक कार्यों में होती है, उसकी श्रद्धा राजसी हो जाती है और जो केवल पाशविक प्रवृत्तियों में निमग्न है, उसकी श्रद्धा तामसी हो जाती है। अंत:करण में सत्, रज एवं तम—इनमें से जिस भी गुण की प्रधानता रहती है, उसी गुण के अनुसार धारणा, मान्यता बनती है और उसी के अनुसार श्रद्धा का निर्माण होता है। इस श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को इसी सत्य का बोध कराते हैं।]

इसके बाद श्रीभगवान अगला सूत्र कहते हैं—

यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसा:।
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जना: ॥4॥

शब्दविग्रह—यजन्ते, सात्त्विका:, देवान्, यक्षरक्षांसि, राजसा:, प्रेतान्, भूतगणान्, च, अन्ये, यजन्ते, तामसा:, जना:।

शब्दार्थ—सात्त्विक पुरुष **(सात्त्विका:)**, देवों को **(देवान्)**, पूजते हैं **(यजन्ते)**, राजस पुरुष **(राजसा:)**, यक्ष और राक्षसों को (तथा) **(यक्षरक्षांसि)**, अन्य (जो) **(अन्ये)**, तामस **(तामसा:)**, मनुष्य हैं, (वे)**(जना:)**, प्रेत **(प्रेतान्)**, और **(च)**, भूतगणों को **(भूतगणान्)**, पूजते हैं **(यजन्ते)**।

अर्थात सात्त्विक मनुष्य देवताओं का पूजन करते हैं, राजसी मनुष्य यक्षों तथा राक्षसों का और दूसरे जो तामसी मनुष्य हैं, वे प्रेतों तथा भूतगणों का पूजन करते हैं। यह एक महत्त्वपूर्ण वचन है और इसके भाव को पिछले श्लोक की निरंतरता में अच्छे से समझा जा सकता है।

पिछले श्लोक में श्रीभगवान ने कहा कि मनुष्य श्रद्धाप्रधान है और उसकी श्रद्धा अंत:करण के अनुरूप होती

है। अंत:करण में जिस तरह के गुण होते हैं—उसी तरह की श्रद्धा जन्म लेती है और जैसी श्रद्धा होती है, वैसी ही हमारी साधना की दिशा हो जाती है।

जिनके भीतर सतोगुण की प्रधानता है, ऐसे मनुष्यों को भगवान ने पहले ही दैवी संपत्ति का अधिकारी कहा है— ऐसे मनुष्य देवों का पूजन करते हैं। देवों से यहाँ पर अर्थ ईश्वरीय शक्तियों से लेना चाहिए; क्योंकि ये दैवी शक्तियाँ और ऐसी दैवी संपत्ति मनुष्य को मुक्ति दिलाती है।

साधना एक प्रकार से समान भान वाली शक्तियों का परस्पर का आकर्षण है। प्रह्लाद की भक्ति उसे भगवान के निकट लाती है तो वहीं अपने ही पिता की आसुरी शक्ति से दूर ले जाती है।

इसीलिए जब भगवान ने नृसिंह का रूप धारण किया और प्रह्लाद के पिता का वध किया तो उनका स्वरूप इतना लोमहर्षक था कि कोई भी उनके निकट नहीं जा पा रहा था। इसके विपरीत प्रह्लाद को नृसिंह इतने अपने लगे कि वे दौड़कर उनकी गोद में चढ़ गए और उन्हें प्रेम करने लगे।

इसीलिए भगवान कहते हैं—**'यजन्ते सात्त्विका देवान्'** अर्थात सात्त्विकी विचारधारा वाले, सात्त्विक अंत:करण वाले, सतोगुण से युक्त श्रद्धा वाले व्यक्ति देवताओं का पूजन करते हैं और देव शक्तियाँ भी ऐसे ही भक्तों की ओर आकर्षित होती हैं।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना जरूरी है कि उन श्रद्धासिक्त अंत:करण वालों की श्रद्धा का विषय भिन्न देवशक्तियाँ हो सकती हैं, पर उनका अंत:करण सात्त्विक होता है। यह संभव है कि मीरा भगवान कृष्ण के प्रेम में दीवानी हों और आचार्य शंकर को सर्वत्र निर्गुण परमात्मा के दर्शन हों, तुलसीदास जी को भगवान राम के प्रति भाव आएँ और अष्टावक्र निर्विकल्प परमेश्वर की प्रतीति करें, परंतु इन सबकी श्रद्धा सात्त्विक है और इन सबकी सात्त्विक श्रद्धा का केंद्र भी सतोगुण के प्रकाश से प्रकाशित दैवी चेतना ही है।

इसके बाद श्रीभगवान कहते हैं कि जिनकी कामनाएँ सांसारिक होती हैं, धन, संपत्ति, संपदा, सांसारिक सफलता के प्रति वे आकर्षित होते हैं—वे अपनी कामनापूर्ति के लिए यक्षों व राक्षसों का पूजन करते हैं। यक्ष एवं राक्षस के प्रति मान्यता वैदिक शास्त्रों से लेकर बौद्ध, जैन सभी धर्म चिंतनों में भी मिलती है। उनके भीतर सात्त्विक प्रवृत्ति के व्यक्तित्व भी हैं और राजसी-तामसिक प्रवृत्ति के भी।

रावण के पिता ऋषि थे, परंतु माँ राक्षसी तो उसके भीतर राक्षसी प्रवृत्ति जग गई तो वहीं विभीषण में जो उन्हीं माता-पिता की संतान था, ऋषिगुण उत्पन्न हो गया। कुवेर यक्ष के रूप में हिंदू धर्म में भी मान्यता प्राप्त हैं और बौद्ध एवं जैन में भी।

जिस व्यक्ति का भाव सांसारिक सफलता की प्राप्ति होता है, वह दिक्पाल, क्षेत्रपाल, लोकपाल के रूप में इन्हीं यक्षगणों का पूजन करता है। जैनों में मणिभद्र नामक यक्ष के पूजन का प्रकरण मिलता है तो वहीं पुष्पदंत नामक गंधर्व शिवमहिम्नस्तोत्र जैसी प्रसिद्ध रचना को जन्म दे देता है।

श्रीभगवान आगे कहते हैं कि तामसी प्रकृति के मनुष्य भूत-प्रेतों का पूजन करते हैं। वे कहते हैं कि **प्रेता-'भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जना:'** अर्थात तामसी मनुष्य भूतों तथा प्रेतों का पूजन करते हैं। भारतीय चिंतन में यद्यपि दोनों का अर्थात भूत-प्रेत का नाम सम्मिलित रूप से लिया जाता है; जबकि प्रेत मात्र वो कहलाते हैं, जिन्होंने शरीर त्यागा है। उसके बाद उनकी गति उनके कर्मानुसार होती है। जो भूतयोनि में जाते हैं, वे ही मात्र भूत कहलाते हैं। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि जिनकी श्रद्धा-निष्ठा तामसिक होती है, वे ऐसी शक्तियों की पूजा-उपासना करते हैं।

इस संदर्भ में 15वीं शताब्दी के एक संत का उल्लेख आता है। उन्होंने वर्षों तक गायत्री महापुरश्चरण किए और जब उन्हें अपेक्षित फल नहीं मिला तो वे श्मशान में बैठकर भूत-प्रेतों को प्रसन्न करने की साधना करने लगे। उन्हें कुछ ही दिन में सफलता मिल गई। उन्हें किसी अदृश्य शक्ति की आवाज सुनाई पड़ी, जो उनसे बोली—"तुम्हारी जो कामना हो, मुझे बोलो।"

वो संत बोले—"कौन बोल रहा है, सामने तो आओ।" वो अदृश्य शक्ति बोली—"तुम्हारे शरीर में गायत्री-साधना का इतना तेज है कि मैं तुम्हारे सामने नहीं खड़ा हो पा रहा हूँ, इसलिए पीछे खड़ा हूँ।"

संत बोले—"फिर आप मेरी क्या कामना पूर्ण करोगे?" संत को तब भान हुआ कि देवशक्तियों की उपासना ही सात्त्विक मार्ग की उपासना है। उन्होंने पुन: पुरश्चरण आरंभ किए। यही संकेत इस श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण करते हैं। (क्रमश:)

सत्कर्म के साथ निष्कामता भी है जरूरी

ब्रह्मवेत्ता संत श्री माधवदास जी के सप्तदिवसीय सत्संग का आज अंतिम दिवस था। ब्रह्मज्ञानी संत माधवदास जी की आत्मा से निस्सृत ज्ञानामृत का पान कर साधक, भक्त, जिज्ञासु, धर्मप्रेमी व आमजन सभी स्वयं को धन्य-धन्य महसूस कर रहे थे। पिछले 6 दिनों में संत प्रवर ने जनसमुदाय की चेतना को अपनी ज्ञानगंगा के प्रवाह से धो-धोकर चैतन्य कर दिया था—तभी तो सत्संग में बैठे हजारों नर-नारी उन्हें अपलक नेत्रों से निहारते हुए स्थिरचित्त हो उनके द्वारा निस्सृत एक-एक शब्द को अपनी आत्मा में अंकित होते हुए महसूस कर रहे थे।

आज संत प्रवर अपने प्रवचन के सार तत्त्व को प्रस्तुत कर रहे थे, ताकि आज से यहाँ उपस्थित सभी लोग धर्म को, अध्यात्म को अपनी रोजमर्रा की जिंदगी में पल-पल जी सकें। वे धर्म-अध्यात्म को मात्र पुस्तकों या शास्त्रों में ही नहीं पढ़ें, वरन उसे अपने आचरण में, व्यवहार में भी उतार सकें। वे भगवान को देवालयों में ही नहीं, बल्कि अपने हृदयरूपी देवालय में हर पल निहार सकें। वे भगवान को सृष्टि के कण-कण में सत्-चित्-आनंद, माधुर्य, सौंदर्य के रूप में पल-पल अभिव्यक्त होते हुए अपने मन की आँखों से निहार सकें, देख सकें और आनंदित हो सकें।

इसीलिए वे आज सत्संग के आखिरी दिन जनसमुदाय को अध्यात्म के सार तत्त्व को सूत्र रूप में प्रदान करने की दृष्टि से कह रहे थे—''किसी भी जीव को सुख और दुःख देने वाले कोई अन्य जीव नहीं हैं, अपितु हमारे द्वारा पूर्व में किए गए अच्छे व बुरे कर्म ही हमारे सुख और दुःख के कारण हैं। सत्य, प्रेम, करुणा, सेवा, संवेदना से युक्त कर्म हमें सुख प्रदान करते हैं तो वहीं राग-द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह से युक्त बुरे कर्म, पापकर्म हमें दुःख प्रदान करते हैं।

''इसलिए सुख पाने का एक ही मार्ग है और वह है सत्कर्म, पर सत्कर्म का भी निष्काम होना आवश्यक है अर्थात सत्कर्म करते हुए साधक का निष्काम होना भी जरूरी है। पुण्यकर्म, शुभ कर्म, अच्छे कर्म करने के साथ-साथ यह भी महत्त्वपूर्ण है कि हम इन सत्कर्मों से प्राप्त होने वाले मधुर फलों के प्रति भी आसक्ति न रखें। हम स्वयं को कर्त्ता नहीं, बल्कि ईश्वर के हाथों का एक उपकरण मात्र मानते हुए अपने सभी सत्कर्मों को मानसिक रूप से ईश्वर को समर्पित करते चलें।

''इससे हमारे हर कर्म ही अकर्म होते जाएँगे और वे हमारे चित्त पर अच्छे-बुरे, शुभ-अशुभ कोई भी असर, प्रभाव, संस्कार आदि नहीं छोड़ पाएँगे। इस प्रकार हमारा चित्त संस्कारशून्य हो सकेगा। संस्कारशून्य, संस्कारमुक्त चित्त में भगवान की मधुर-मनोहर छवि हमेशा-हमेशा के लिए स्थिर हो सकेगी। तब भगवान की मधुर-मनोहर छवि का ध्यान करते-करते हमारे चित्त का भगवान में पूर्णतः विलय और विसर्जन हो सकेगा।

''तब परमात्मा हमारी आत्मा में, सत्-चित्-आनंद, माधुर्य, सौंदर्य ज्ञान के रूप में प्रकट हो सकेंगे। तब हम स्वयं को शरीर नहीं, बल्कि आत्मा के रूप में अनुभव कर सकेंगे और तदनुरूप आचरण कर सकेंगे। तब हमारे हर प्रकार के दुःखों के कारण स्वयमेव ही दूर होते जाएँगे। तब हमारी जीवन-दृष्टि बिलकुल ही अलग होगी। जीवन को, जगत् को, कार्य को करने या देखने का हमारा नजरिया बिलकुल ही अलग होगा। तब हम यह सत्य स्वयं ही महसूस कर सकेंगे कि हम स्वयं ही अपने सुख व दुःख के कारण हैं। दूसरे जीव तो हमारे सुख और दुःख के निमित्त मात्र हैं।

''जिस प्रकार कोई व्यक्ति हमें किसी शस्त्र से घायल कर देता है तो हम उस शस्त्र को नहीं, बल्कि उस शस्त्र को चलाने वाले व्यक्ति को ही अपराधी मानते हैं—ठीक उसी प्रकार किसी भी जीव को सुख व दुःख देने में वास्तविक कारण उसके अपने ही पूर्व में किए हुए अच्छे व बुरे कर्म होते हैं, न कि वे जीव या परिस्थितियाँ जिनके द्वारा ये दुःख व सुख मिलते हैं। यह कर्मबोध हो जाने पर हम अपने पूर्व

में किए गए अच्छे-बुरे कर्मों के फल को तटस्थ व समता भाव से सहन कर पाते हैं और उनको भोग पाते हैं।

"इस प्रकार कर्म करने से हमारे पुराने अर्थात पूर्वकृत कर्म अपना फल देकर नष्ट हो जाएँगे और वर्तमान में हमारे द्वारा किए जा रहे सत्कर्म व निष्काम कर्म हमारे चित्त में कोई कर्मसंस्कार अंकित व संचित नहीं कर सकेंगे। इस प्रकार हम कर्मबंधन से मुक्त होकर आत्मिक आनंद की अनुभूति कर सकेंगे। हम सुख-दुःख, शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य, हानि-लाभ के द्वंद्वों से मुक्त हो, ऊपर हो जीवन-मरण के बंधन से भी मुक्त हो पल-पल परम आनंद, ब्रह्मानंद की अनुभूति पा सकेंगे।

"संत प्रवर ने अंत में कहा कि यदि आप सब सचमुच अपना कल्याण चाहते हैं तो आपको अध्यात्म को अपने जीवन में पल-पल जीना होगा। आप नियमित भगवद्उपासना करें। उपासना में अपने हृदयकमल पर आसीन भगवान की मधुर मनोहर छवि का नित्य ध्यान किया करें। दीर्घकाल तक धैर्य व श्रद्धापूर्वक उपासना करते रहने से आपकी आत्मा में भगवद्ज्ञान, भगवत्प्रेम, भगवत्प्रकाश अवतरित होंगे, जिससे आपका जीवन आनंद से भर उठेगा।

"इसके साथ ही आप नित्य शास्त्रों का स्वाध्याय करते रहें, जिससे आप बुरे कर्मों से बचे रहें और सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा पाते रहें। नकारात्मक नहीं, वरन सदैव सकारात्मक सोच से सराबोर रहें। साथ ही अपनी प्रतिभा, समय, श्रम व धन को परहित व परोपकार के कार्य में नित्य लगाते रहें, इससे चित्त शुद्धि होती है, मन निर्मल होता है और भगवत्कृपा प्राप्त होती है।"

इस प्रकार लोगों में दिव्य भाव प्रेरणाएँ संप्रेषित कर संत प्रवर ने अपनी वाणी को विराम दिया और इसी के साथ सप्त दिवसीय सत्संग का समापन हुआ। तत्पश्चात सभी लोग संत प्रवर के दिव्य संदेश को ग्रहण कर अपने-अपने गंतव्य के लिए चले गए। ❑

दो मित्र थे—एक कुमार्गी और कुसंगी तो दूसरा सुमार्गी और सुसंगी। दोनों अपनी-अपनी राह पर जा रहे थे। मार्ग में कुसंगी को स्वर्णमुद्रा मिली और सुसंगी को काँटा चुभा। कुछ दूरी पार कर दोनों मित्र मिले। दोनों ने एकदूसरे से पूछा—"मार्ग में क्या मिला?" दोनों ने एकदूसरे को मार्ग की बात बताई। सुमार्गी मित्र को बहुत आश्चर्य हुआ। सुमार्ग का फल काँटा और कुमार्ग का फल स्वर्णमुद्रा।

अंत में दोनों ने एक ज्ञानी संत के पास पहुँचकर उन्हें पूरी बात बताई। संत ने अपनी अंतर्दृष्टि से बात की गहराई में जाकर कुमार्गी से कहा—"बेटा! तुम्हें तो पूर्वजन्मों के पुण्यों के कारण पूरा राज्य मिलने वाला था, परंतु तुम्हारे कुकर्मों से पुण्य क्षीण हो गए और राज्य के बदले केवल एक स्वर्णमुद्रा ही मिली है, तुम्हें बड़ी हानि हुई।" फिर संत सुमार्गी से बोले—"तुम्हें अपने पूर्वजन्मों के जघन्य पापों के कारण इस जन्म में सूली मिलने वाली थी, परंतु सत्कर्मों के प्रताप से तुम्हारे पाप नष्ट हो गए और केवल काँटा ही चुभा है। तुम्हें बहुत लाभ हुआ है।" दोनों की जिज्ञासाओं का समाधान हो गया था। कुमार्गी ने अब सुमार्ग अपनाने का निर्णय ले लिया।

वेदांत दर्शन के पुरोधा

आदिगुरु शंकराचार्य का जन्म केरल के कालड़ी नामक ग्राम में हुआ था। वे अपने ब्राह्मण माता-पिता की एकमात्र संतान थे। बचपन में ही उनके पिता का देहांत हो गया। शंकर की रुचि आरंभ से ही संन्यास की तरफ थी। अल्पायु में ही आग्रह करके माता से संन्यास की अनुमति लेकर गुरु की खोज में निकल पड़े। वेदांत के गुरु गोविंद पाद से ज्ञान प्राप्त करने के बाद उन्होंने सारे देश का भ्रमण किया।

मिथिला के प्रमुख विद्वान मंडन मिश्र को शास्त्रार्थ में हराया एवं मंडन मिश्र की पत्नी भारती को रति विज्ञान में पारंगत होकर पराजित किया। उन्होंने तत्कालीन भारत में व्याप्त धार्मिक कुरीतियों को दूर कर अद्वैत वेदांत की ज्योति से देश को आलोकित किया। सनातन धर्म की रक्षा हेतु उन्होंने भारत में चारों दिशाओं में चार मठों की स्थापना की तथा शंकराचार्य पद की स्थापना करके उस पर अपने चार प्रमुख शिष्यों को आसीन किया।

उत्तर में ज्योतिर्मठ, दक्षिण में श्रृंगेरी, पूर्व में गोवर्धन तथा पश्चिम में शारदा मठ नाम से देश में चार धामों की स्थापना की। उन्होंने 34 साल की अल्पायु में पवित्र केदारनाथ धाम में शरीर त्याग दिया। सारे देश में शंकराचार्य को सम्मानसहित आदिगुरु के नाम से जाना जाता है। आदिगुरु शंकराचार्य ने उपनिषदों, श्रीमद्भगवद्गीता एवं ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखे थे। उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र एवं गीता पर लिखे गए शंकराचार्य के भाष्य को 'प्रस्थानत्रयी' के अंतर्गत रखते हैं।

उन्होंने हिंदू धर्म के स्थायित्व, प्रचार-प्रसार एवं प्रगति में अपूर्व योगदान दिया। उनके व्यक्तित्व में गुरु, दार्शनिक, समाज एवं धर्मसुधारक, विभिन्न मतों तथा संप्रदायों के समन्वयकर्त्ता का रूप दिखाई पड़ता है। वे अपने समय के उत्कृष्ट विद्वान एवं दार्शनिक थे। इतिहास में उनका स्थान इनके 'अद्वैत सिद्धांत' के कारण अमर है। गौड़पाद के शिष्य 'गोविंद योगी' को आदिगुरु शंकराचार्य ने अपना प्रथम गुरु बनाया। गोविंद योगी से उन्हें 'परमहंस' की उपाधि प्राप्त हुई।

वे एक महान समन्वयवादी थे। उन्हें हिंदू धर्म को पुनः स्थापित एवं प्रतिष्ठित करने का श्रेय दिया जाता है। एक तरफ उन्होंने अद्वैत चिंतन को पुनर्जीवित करके सनातन हिंदू धर्म के दार्शनिक आधार को सुदृढ़ किया, तो दूसरी तरफ उन्होंने जनसामान्य में प्रचलित मूर्तिपूजा का औचित्य सिद्ध करने का भी प्रयास किया। सनातन हिंदू धर्म को दृढ़ आधार प्रदान करने के लिए उन्होंने विरोधी पंथ के मत को भी आंशिक तौर पर अंगीकार किया। शंकर के मायावाद पर महायान बौद्धिक चिंतन का प्रभाव माना जाता है।

इसी आधार पर उन्हें प्रच्छन्न बुद्ध कहा गया है। शंकर के अद्वैत दर्शन का सार—ब्रह्म और जीव मूलतः और तत्त्वतः एक हैं। हमें जो भी अंतर नजर आता है, उसका कारण अज्ञान है। जीव की मुक्ति के लिए ज्ञान आवश्यक है। जीव की मुक्ति ब्रह्म में लीन हो जाने में है। आचार्य शंकर जीवन में धर्म, अर्थ और काम को निरर्थक मानते हैं, यदि इनके द्वारा परम पुरुषार्थ मोक्ष नहीं सधता और मोक्ष के लिए वे ज्ञान को अद्वैत ज्ञान का परम साधन मानते हैं; क्योंकि ज्ञान समस्त कर्मों को जलाकर भस्म कर देता है।

सृष्टि का यह विवेचन करते समय कि इसकी उत्पत्ति कैसे होती है—वे इसका मूल कारण ब्रह्म को मानते हैं। वह ब्रह्म अपनी 'माया' शक्ति के सहयोग से इस सृष्टि का निर्माण करता है, ऐसी उनकी धारणा है; लेकिन यहाँ यह नहीं भूलना चाहिए कि शक्ति और शक्तिमान एक ही हैं। दोनों में कोई अंतर नहीं है।

इस प्रकार सृष्टि के विवेचन से एक बात और भी स्पष्ट होती है कि परमात्मा को सर्वव्यापक कहना भी भूल है; क्योंकि वह सर्व रूप है। वह अनेक रूप हो गया, 'यह अनेकता है ही नहीं, मैं एक हूँ बहुत हो जाऊँ' अद्वैत मत का यह कथन संकेत करता है कि शैतान या बुरी आत्मा का कोई अस्तित्व नहीं है। ऐसा कहीं दिखाई भी देता है, तो वह

वस्तुत: नहीं है, भ्रम है। **जीवेम् ब्रह्मैव नापर:**—अर्थात जीव ही ब्रह्म है, अन्य नहीं।

ऐसे में बंधन और मुक्ति जैसे शब्द भी खेल मात्र हैं। विचारों से ही व्यक्ति बँधता है। उसी के द्वारा मुक्त होता है। भवरोग से मुक्त होने का एकमात्र उपाय है विचार। उसी के लिए निष्काम कर्म और निष्काम उपासना को आचार्य शंकर ने साधना बताया। निष्काम होने का अर्थ है—संसार की वस्तुओं की कामना न करना; क्योंकि शारीरिक माँग तो प्रारब्धता से पूरी होगी, और मनोवैज्ञानिक चाह की कोई सीमा नहीं है।

इस सत्य को जानकर अपने कर्त्तव्यों का पालन करना तथा ईश्वरीय सत्ता के प्रति समर्पण का भाव, आलस्य से उठाकर चित्त को निश्चल बना देना, जिसमें ज्ञान टिकता है। श्रीमदाद्यशंकराचार्य ने अपने दिव्य अलौकिक ज्ञान से उस समय चारों ओर फैले हुए जैन व बौद्ध मत का खंडन करके अद्वैत मत स्थापित किया।

गीता पर शंकराचार्य का जो भाष्य है, उसमें यह प्रतिपादन किया गया है कि उपनिषद् व ब्रह्मसूत्र में केवल अद्वैत ज्ञान का ही नहीं, वरन उनमें संन्यास मार्ग का भी उपदेश है। किसी भी मत, संप्रदाय के दो मुख्य पहलू होते हैं—एक उनका तत्त्वज्ञान व दूसरा उनकी आचरण-प्रणाली।

आदिगुरु शंकराचार्य जी का तत्त्वज्ञान—अद्वैत ज्ञान है व आचरण-प्रणाली है—संन्यास। प्रमाणस्वरूप में **ज्ञानाग्नि: सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन**—अर्थात ज्ञानरूपी अग्नि से समस्त कर्म भस्मीभूत हो जाते हैं और **सर्व कर्माखिलं पार्थ ज्ञानेपरिसमाप्यते**—अर्थात सभी कर्मों का अंत ज्ञान में ही होता है। कर्मयोग ज्ञानप्राप्ति की गौण साधना है। कर्मसंन्यासपूर्वक ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैत सिद्धांत का प्रतिपादन किया। इस मतानुसार शंकराचार्य जी का माया-मिथ्यात्ववाद और अद्वैत सिद्धांत दोनों ही झूठे हैं। जीव (चित्), जगत् (अचित्) व जगदीश ये तीनों तत्त्व यद्यपि भिन्न हैं, तथापि जीव व जगत् एक ही ईश्वर के अंग हैं। अत: विशिष्ट अद्वैत है ईश्वर के इस सूक्ष्मचित् व अचित् से ही फिर स्थूलचित् व अचित् अर्थात जीव व जगत् की उत्पत्ति हुई है। रामानुजाचार्य जी का संप्रदाय तत्त्वज्ञान की दृष्टि से विशिष्टाद्वैत को व आचरण की दृष्टि से वासुदेव भक्ति को ही सर्वश्रेष्ठ मानता है।

इनके अनुसार कर्मनिष्ठा कोई स्वतंत्र वस्तु नहीं है, वह केवल ज्ञाननिष्ठा की उत्पादक है। द्वैत संप्रदाय के प्रवर्तक मध्वाचार्य के अनुसार परब्रह्म व जीव में पूर्ण या अपूर्ण किसी भी रीति से एकता नहीं हो सकती। ये पूर्णत: भिन्न ही हैं, परंतु जीव व जगत् पर ईश्वर का पूर्ण नियंत्रण है। सगुण ईश्वर जगत् का स्रष्टा, पालक और संहारक है, भक्ति से प्रसन्न होने वाले ईश्वर के इशारे पर ही सृष्टि का खेल चलता है, यद्यपि जीव स्वभावत: ज्ञानमय और आनंदमय है, परंतु शरीर, मन आदि के संसर्ग से इसे दु:ख भोगना पड़ता है।

यह संसर्ग कर्मों के परिणामस्वरूप होता है, अत: जीव ईश्वरनियंत्रित होने पर भी कर्त्ता और फलभोक्ता है। ईश्वर में नित्य प्रेम ही भक्ति है, जिससे जीव मुक्त होकर, ईश्वर के समीप स्थित होकर, आनंदभोग करता है; क्योंकि भौतिक जगत् ईश्वर के अधीन है।

ईश्वर की इच्छा से ही सृष्टि और प्रलय में यह क्रमश: स्थूल और सूक्ष्म अवस्था में स्थित होता है। रामानुज की तरह मध्व जीव और जगत् को ब्रह्म का शरीर नहीं मानते। ये स्वत: स्थित तत्त्व हैं, उनमें परस्पर भेद वास्तविक है, ईश्वर केवल इनका नियंत्रण करता है। इस दर्शन में ब्रह्म जगत् का निमित्त कारण है, प्रकृति (भौतिक तत्त्व) उपादान कारण है।

गीता के भाष्य में श्री मध्वाचार्य जी का कथन है कि यद्यपि गीता में निष्काम कर्मयोग के महत्त्व को बताया गया है तथापि वह केवल साधन मात्र है और भक्ति की अंतिम निष्ठा है, भक्ति के सिद्ध हो जाने पर कर्म करना या न करना एक ही बात है। **ध्यानात् कर्म-फलत्याग:** ध्यान व भक्ति की अपेक्षा कर्मफल-त्याग या निष्काम कर्म करना इत्यादि कुछ वचन हालाँकि इस सिद्धांत के विरुद्ध हैं। अपने गीता भाष्य में श्री मध्वाचार्य जी कहते हैं कि इन वचनों को अक्षरश: सत्य न समझकर अर्थवादात्मक ही समझना चाहिए।

शुद्धाद्वैत सिद्धांत के प्रतिपादक वल्लभाचार्य के अनुसार मायारहित अर्थात शुद्ध जीव और परब्रह्म एक ही हैं, दो नहीं। इसीलिए इसे शुद्धाद्वैत संप्रदाय कहा गया। यह सिद्धांत शंकराचार्य जी के समान यह नहीं मानता कि जीव व ब्रह्म एक ही हैं। इनके सिद्धांत कुछ ऐसे हैं, जैसे—जीव ईश्वर से अभिन्न होने के कारण अग्नि की चिनगारी के समान ईश्वर का ही अंश है।

ये मानते हैं कि मायात्मक जगत् मिथ्या नहीं है। माया परमेश्वर की इच्छा से उससे विभक्त हुई एक शक्ति है। मायाधीन जीव को बिना ईश्वर की कृपा के मोक्षज्ञान नहीं हो सकता। इसलिए मोक्ष का मुख्य साधन भगवद्भक्ति ही है।

इस मार्ग वाले परमेश्वर के अनुग्रह को पुष्टि या पोषण भी कहते हैं। जिससे यह पंथ पुष्टिमार्ग भी कहलाता है। उनमें यह निर्णय लिया गया है कि भगवान ने अर्जुन को पहले सांख्ययोग व कर्मयोग बताया है और अंत में उसे भक्तामृत पिलाकर कृतकृत्य किया है।

इसलिए भगवद्भक्ति व विशेषतः निवृत्ति-विषयक पुष्टिमार्गीय भक्ति ही गीता का प्रधान तात्पर्य है। यही कारण है कि भगवान ने गीता के उपदेश में कहा है—'**सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज**' सब धर्मों को छोड़कर मेरी ही शरण आ।

निंबार्काचार्य जी के विषय में मान्यता है कि ये आचार्य रामानुज के बाद व आचार्य मध्वाचार्य के पूर्व हुए। करीब सन् 1216 के आस-पास इनके मत का नाम द्वैताद्वैत व भेदाभेद बाद में पड़ा। इनका प्रस्थानत्रयी पर भाष्य 'पारिजात सौरभ' (दसश्लोकी) के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अनुसार जीव, जगत् व ईश्वर तीनों ही भिन्न हैं तथापि जीव व जगत् का व्यापार तथा अस्तित्व ईश्वर की इच्छा पर ही अवलंबित है, स्वतंत्र नहीं है और परमेश्वर में ही जीव व जगत् के सूक्ष्म तत्त्व रहते हैं।

आचार्य निंबार्क के अनुसार जीव, जगत् और ब्रह्म में वास्तविक रूप से भेदाभेद संबंध है। निंबार्क इन तीनों के अस्तित्व को उनके स्वभाव, गुण और अभिव्यक्ति के कारण भिन्न मानते हैं तो तात्त्विक रूप से एक होने के कारण तीनों को अभिन्न मानते हैं। निंबार्क के अनुसार उपास्य राधाकृष्ण ही पूर्ण ब्रह्म हैं। यह मत राधाकृष्ण की भक्ति को स्वीकार करता है। श्रीमद्भागवत इस मत का प्रधान ग्रंथ है। इस मतानुसार भक्ति से ज्ञान का उदय होने पर संसार के दुःख से मुक्त जीव ईश्वर का सामीप्य प्राप्त करता है। इसी संप्रदाय के केशव काश्मीरी भट्टाचार्य ने गीता पर तत्त्वप्रकाशिका नामक टीका लिखा है। इस तरह वेदांत दर्शन के अनेकों स्वरूप उसकी व्यापकता को प्रतिपादित करते हैं। ❑

एक सेठ एक साधु से मिलने आया। साधु को प्रणाम करके उसने कहा—"बाबा! तमाम प्रयत्नों के बावजूद भी उपासना में मेरा मन नहीं लगता। आप ही कुछ उपाय बताइए।" सेठ के घर की खिड़कियों में शीशे लगे हुए थे। साधु ने सेठ को काँच के पार बाहर का नजारा दिखाया। सेठ को सब नजर आ रहा था, सेठ देखकर प्रसन्न हो गया।

फिर साधु सेठ को दूसरे कमरे में ले गए। वहाँ कमरों की खिड़कियों पर चाँदी की चमकीली परत लगी हुई थी। साधु बोले—"सेठ जी! जरा देखो तो इस चाँदी की चमकीली परत के पार आप क्या देख पाते हैं?" सेठ ने उस परत के पार देखा तो उन्हें अपने चेहरे के सिवा बाहर का कुछ नहीं दिखा। सेठ बोला—"बाबा! यहाँ बाहर का कुछ नहीं दिखता।"

साधु बोले—"जिस तरह इस चाँदी की परत लगी खिड़कियों से बाहर का कुछ नहीं दिख पाता, इसी तरह तुम्हारे व्यक्तित्व में अहंकार व दोष-दुर्गुणों की परत चढ़ी है; इसीलिए उपासना के समय तुम्हें केवल ये ही दिखते हैं, परमात्मा नहीं। यदि तुम अपने व्यक्तित्व को काँच की तरह पारदर्शी बनाओगे तो तुम्हें संसार के उस पार परमात्मा की झलक मिलेगी।"

आज गायत्री परिवार का जो भी वृहद् स्वरूप दिखाई पड़ता है, उसके पीछे परमवंदनीया माताजी का तप एवं समर्पण छिपा हुआ है। अश्वमेध यज्ञों की शृंखला के माध्यम से गायत्री परिवार को जो विस्तार उन्होंने प्रदान किया, वह सर्वविदित है। उन्हीं शृंखलाओं के मध्य परमवंदनीया माताजी द्वारा दिए गए उद्बोधन आज भी अनेकों के लिए प्रेरणास्रोत हैं। अपने एक ऐसे ही प्रस्तुत उद्बोधन में वे गायत्री मंत्र की अद्भुत एवं विलक्षण शक्ति के विषय में बताते हुए कहती हैं कि गायत्री मंत्र के भीतर इतनी शक्ति है कि वह मानव को महामानव बना सकती है। वंदनीया माताजी गायत्री परिवार के समस्त विस्तार का आधार भी गायत्री मंत्र की इसी विशाल शक्ति को बताती हैं। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.......

गायत्री मंत्र की अद्भुत शक्ति

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

हमारे आत्मीय परिजनो! गायत्री मंत्र में अपूर्व शक्ति है। जिस किसी ने भी श्रद्धा के साथ, विश्वास के साथ और निष्ठा के साथ इसकी उपासना की है, वे मानव ही नहीं; बल्कि देवमानवों की श्रेणी में आ गए, महामानवों की श्रेणी में आ गए।

वे देवताओं की श्रेणी में आ गए, ऋषियों की श्रेणी में और संतों की श्रेणी में आ गए। यदि निष्ठा और श्रद्धा के साथ इस मंत्र का मनन-चिंतन और उपासना की जाए, तभी यह सब संभव है।

गायत्री में चौबीस अक्षर होते हैं और उसके तीन चरण होते हैं। इस महामंत्र के चौबीसों अक्षरों में इतनी प्रेरणा भरी हुई है कि प्रत्येक अक्षर को यदि अपने जीवन में उतारा जाए तो व्यक्ति मानव से महामानव, महामानव से संत और संत से ऋषि हो सकता है। हमने यहाँ पर वही प्रक्रिया लागू की है।

गुरुजी ने चौबीस-चौबीस लक्ष के चौबीस पुरश्चरण किए थे। जौ की रोटी खाकर के और छाछ पीकर के उन्होंने यह दिखाया कि गायत्री मंत्र में कितनी शक्ति भरी हुई है। उस शक्ति का स्वरूप यदि आपको देखना है, तो आपको आमंत्रित किया जाता है कि कभी आप भारतवर्ष आएँ और यहाँ आप देखिए कि गायत्री मंत्र की कितनी विशाल शक्ति है, जो इस शक्ति के रूप में यहाँ फैली पड़ी है।

यहाँ हम मानव को महामानव बनाने के लिए उसको प्रेरणा देते हैं और उसको बनाते हैं। यह हमारी भट्ठी है, यह हमारी प्रयोगशाला है, जहाँ कि हम देवमानवों के रूप में एक सेना तैयार करते हैं और वह सेना जिसे मोर्चे पर जहाँ लगा दिया जाता है, वहीं वह सफल होकर के आती है। लोग भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं और यह कहते हैं कि यह कौन-सी संस्था है, जो कि त्याग और तपस्वी का रूप धारण किए हुए है।

बेटे! जहाँ देखो, वहीं ऐसा मालूम पड़ता है कि यहाँ साक्षात् देवताओं का निवास है। यहाँ जितने व्यक्ति निवास करते हैं, वे देवता हैं। आखिर ये किसने बनाए हैं? तब आपको मालूम पड़ेगा कि उस महामानव ने, उस संत ने और

उस ऋषि ने बनाए हैं, जिसने कि अपने को तपा-तपा करके हड्डी-हड्डी गला दी। वही श्रद्धा आप लोगों में भी काम कर रही है। फरक इतना ही है, थोड़ा-सा ही अंतर है कि उस श्रद्धा को ज्यादा-से-ज्यादा अमल में नहीं लाया गया। यदि अमल में लाया गया होता, तो यही भावना, यही प्रेरणा आप लोगों के अंदर भी काम करती।

शक्ति के दो स्वरूप

आप लोगों को जो सौंपा गया है, उस शक्ति के दो स्वरूप होते हैं। एक तो प्रत्यक्ष और एक परोक्ष। परोक्ष वह है, जो तपश्चर्या से ताल्लुक रखता है और प्रत्यक्ष वह है, जो क्रिया के रूप में लागू है। जो क्रिया के रूप में दिखाई पड़ता है, वही रूप हमने आपको भी सौंपा है कि आप भी इस दिशा में लग जाइए जो प्रत्यक्ष स्वरूप है। प्रत्यक्ष ही दिखाई पड़ता है, परोक्ष रूप दिखाई नहीं पड़ता। परोक्ष रूप उनको दिखाई पड़ता है, जो परोक्ष शक्ति को जानते हैं।

जिन्होंने जाना नहीं, समझा नहीं, वे परोक्ष रूप की शक्ति को क्या पहचानेंगे, उस तक तो हम व्यक्ति को नहीं ले जाते; वरन हम व्यक्ति को व्यावहारिक अध्यात्म सिखाते हैं और यह कहते हैं कि आप इस रास्ते पर चलिए, जिस रास्ते पर हम चल रहे हैं। हमने चलकर के दिखाया है कि यह घाटे का रास्ता नहीं है; वरन नफे का रास्ता है। इस रास्ते पर जो कोई भी चला है, उसका स्वयं का कल्याण होता है और उससे जुड़ने पर दूसरों का कल्याण होता है।

बेटे! अभी मैं यह निवेदन कर रही थी कि अपने बच्चों में संस्कार डालिए, महिलाओं में संस्कार डालिए, पुरुषों में संस्कार डालिए। आज ये संस्कारविहीन हैं। इनमें संस्कार नहीं पाए जाते हैं। लबादा तो पाया जाता है। फैशनपरस्ती से लेकर के अन्य जो प्रसाधन हैं, उसके बहाव में बहते तो जा रहे हैं।

कोई जमाना था, जबकि हमारे भारतवर्ष में लोग शिक्षा लेकर के जाते थे। यहाँ नदियों को माँ के रूप में और प्रतिमाओं को भगवान के रूप में पूजा जाता था। इस बात को सारा संसार मानता था; लेकिन आज तो न मालूम हमारे दिमागों में क्या छा गया है, जिससे हम पतन के रास्ते पर जा रहे हैं। पतन के रास्ते पर न जाएँ, बल्कि ऊँचाई की ओर देखें, नीचाई की ओर नहीं देखें।

यदि नीचाई की ओर देखेंगे, तो हम नीचे गिरते हुए चले जाएँगे। अगर हम ऊँचाई की तरफ देखेंगे, तो हम हिमालय से ऊँचे हो सकते हैं और उन ऊँचाइयों को छू सकते हैं, जो आज तक विज्ञान ने भी नहीं छुई थीं।

मानसिक विकृति का परिणाम

विज्ञान जिस तेजी से बढ़ता हुआ चला जा रहा है, आपको मालूम है। एटम बमों से लेकर जो विनाशकारी सामान, जो सरंजाम जुटाया जा रहा है, आपको मालूम है। लेकिन सहजता नहीं है, भावनाएँ नहीं हैं, मिलनसारिता नहीं है, प्यार नहीं है। भाई-भाई के प्रति, बहन-बहन के प्रति, सबके प्रति निष्ठुरता पैदा होती जा रही है। जातिवाद के नाम पर, संप्रदायों के नाम पर, मजहबों के नाम पर मनुष्य बँटता जा रहा है; जबकि सारे संसार में जो कौम है, वह एक ही कौम है। वह मानवतावादी कौम है। सबके अंदर एक ही खून, एक ही मांस, एक ही मज्जा पैदा हुआ है, फिर एकदूसरे भाई को, एकदूसरे भाई से अलग क्यों किया जा रहा है?

उसमें एक ही कारण छिपा हुआ मालूम पड़ता है और वह है—हमारे दिमागों की विकृति। हमारे दिमागों का विकृत चिंतन। हमारे दिमाग में सही चिंतन नहीं आता। हमें एकदूसरे को ऊँचा उठाना नहीं आता। हमको आना चाहिए। आइए आप और हम मिलकर के यह प्रयास करें कि हम इनको ऊँचा उठाएँ। इनको भावनात्मक दृष्टि से ऊँचा उठाएँ। उनकी श्रद्धा को परिपक्व करें। उनकी श्रद्धा जब तक परिपक्व नहीं होगी, तब तक यही नरसंहार होता रहेगा। होता रहा है और आगे भी होता ही रहेगा।

इसे रोका कब जाएगा? तब रोका जाएगा, जब उनकी श्रद्धा उभारी जाएगी। उनके अंदर उदारता और प्यार जगाया जाएगा। उनके अंदर यह समाया जाएगा, यह कहा जाएगा कि भगवान की शक्ति कहीं है। उस शक्ति को आप पहचानिए। यदि आपने उसका पल्ला पकड़ा है श्रद्धा के साथ, तो वही पार लगाएगा। गायत्री मंत्र की बाबत मैंने शुरू में कहा था कि उसी का संबल हम लेकर के चले हैं और उसी से यहाँ तक इतनी बड़ी मंजिल पार करके आए हैं और वही मंजिल हम आप सबको दिखाते हैं और यह कहते आए हैं कि आप भी इसी रास्ते पर चलिए, आपका कल्याण होगा और आपके समीपवर्ती जो भी आपसे जुड़े हुए हैं, उनका भी कल्याण होगा।

बेटे! ऐसे कितने ही व्यक्ति हैं, जिनका नाम मैं बताना नहीं चाहती हूँ। इस मंत्र से कितना-कितना उनको लाभ पहुँचा

है, यदि नाम गिनाने लगूँ तो संभव है, पूरा ग्रंथ लिख जाएगा और यह लिखा जाएगा कि अमुक-अमुक व्यक्तियों को इससे क्या-क्या लाभ मिला, वह लाभ क्यों नहीं मिला?

गुरुदेव की शक्ति

उसका एक लाभ गायत्री मंत्र की शक्ति से और गुरुजी की शक्ति से मिला; क्योंकि उन्होंने सारी जिंदगी अपने को तपाया है और तपाने के पश्चात जो भी कुछ मुँह से कहा है, वह सफल होता रहा है। इसमें अहंकार नहीं है। यह शेखी नहीं है, अहंकार नहीं है, बल्कि सच्चाई है। वह यथार्थ है कि जो भी कुछ कहा वह सत्य हो जाता है; क्योंकि उन्होंने अपनी जिह्वा पर संयम, अपनी इंद्रियों पर संयम, अपने शरीर पर संयम, अपने विचारों पर संयम किया है। सारे विश्व के कल्याण के अतिरिक्त चिंतन में उनको कुछ भी नजर नहीं आता कि घर-परिवार कहाँ है? यह सारा विश्व हमारा परिवार है। विश्व मानव यही हमारा परिवार है, यही हमारा घर है, यही हमारा भाई है, यही हमारा भतीजा है, यही हमारा कुटुंबी है, यही हमारा बेटा है। आप सबको हम अपना भाई, भतीजा, बेटा, कुटुंबी, चाचा, ताऊ मानते हैं। आप हमारे और हम आपके हैं।

भारतीय संस्कृति के लिए जितना कुछ किया जाए, उतना ही थोड़ा है। किसी जमाने में सात ऋषि थे और सात ऋषि सारे विश्व में छाए हुए थे। आज देवमानवों के रूप में इतनी बड़ी सेना और इतनी बड़ी संख्या हमारे पास है। यह कितना बड़ा संगठन है। यदि आप यह देखें और मिलकर के कार्य करेंगे, तो कुछ ही दिनों में यह चमत्कार देखने को मिलेगा कि किस तेजी से परिवर्तन होता हुआ चला जा रहा है।

यह क्रांति है। क्रांति जीवन में आती है, तो जो कोई भी उठा है, वह आगे बढ़ता, उठता हुआ चला जाता है और जो गिरता है, वह गिरता हुआ चला जाता है। आपने शीरी-फरहाद का किस्सा तो सुना ही होगा। जब भीतर से उत्साह होता है, तो व्यक्ति कुछ भी कर गुजरने को तत्पर हो जाता है। अकेला ही फरहाद नहर को निकाल करके लाया था और शीरी के साथ उसकी शादी हो गई थी। हम आपको कितने-कितने उदाहरण सुनाएँ कि जब भी भीतर से व्यक्ति की इच्छाशक्ति जाग्रत होती है, तो वह क्या-क्या नहीं बन जाता है।

विदेश में लुइस ब्रेल नाम की एक महिला हुई है। जो गूँगी भी थी, अंधी भी थी और सुनती भी नहीं थी; लेकिन कितने ही विषयों में उसने डी०लिट् किया था और उसने अंधे व्यक्तियों के लिए ब्रेल लिपि का प्रादुर्भाव किया था। उस महिला ने, जो कि स्वयं प्रज्ञाचक्षु थी। यदि इस उत्तर से अपनी शक्ति को जगाएँ, तो शक्ति की कोई कमी है क्या? कोई कमी नहीं है।

आपके अंदर भी शक्ति की कोई कमी है क्या? नहीं। हमको दिखाई पड़ता है कि आपके अंदर भी कितनी अपार शक्ति भरी हुई पड़ी है; लेकिन आप उस शक्ति को पहचान नहीं पा रहे हैं। उस शक्ति को जगाने के लिए हमने संकल्प लिया है।

प्रत्येक व्यक्ति के अंदर इतनी शक्ति, इतना खजाना भरा पड़ा है। उस खजाने को फैलाना चाहिए। उसकी शक्ति को जगाना चाहिए, उसको ऊँचा उठाना चाहिए; ताकि वह अपने भी काम में आए और दूसरों के काम भी आए। उसका स्वयं का विकास हो और दूसरों का भी विकास हो। इन्हीं शब्दों के साथ मैं अपनी बात खतम करती हूँ। यहाँ जो भी महानुभाव बैठे हैं, उनको हमारी हार्दिक शुभकामनाएँ।

॥ ॐ शांतिः ॥

योग के प्रचार-प्रसार में देव संस्कृति विश्वविद्यालय का अद्वितीय स्थान

पूरी विश्व मानवता के लिए योग, भारत की ही देन है। इस विधा को संपूर्ण मानव जाति को सौंपने का प्रयास भारत ने किया है। इसी प्रयास के फलस्वरूप अनेक संस्थान योग को रत्न के समान आदर-सम्मान देते हुए विद्यार्थियों को योग-अध्यात्म की शिक्षा देते हैं। इसके बावजूद कुछ ही संस्थान ऐसे हैं, जो स्वयं को इस कार्य के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित करते नजर आते हैं।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय उन गिने-चुने संस्थानों में से एक है, जिसने अपना सर्वस्व इस प्राचीन विधा के शिक्षण-प्रशिक्षण एवं ज्ञान विस्तार के लिए समर्पित कर दिया है। इस समर्पण के कारण ही आज विश्वभर में देव संस्कृति विश्वविद्यालय योग में एक विशिष्ट स्थान रखता है। साथ ही यह विश्वविद्यालय इस दिव्य मार्ग का देश ही नहीं, बल्कि विश्वभर में भी नेतृत्व करता है।

योग के क्षेत्र में उपलब्धि पाने वाले कई व्यक्ति आज देव संस्कृति विश्वविद्यालय से अपना संबंध स्थापित करने का प्रयास करते हैं। यह गर्व का विषय है कि 21 जून को अंतरराष्ट्रीय योग दिवस के रूप में मान्यता दिलवाने एवं विश्व स्वास्थ्य संगठन में योग विशेषज्ञ की भूमिका निभाने वाले देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी इस संस्थान में कार्यरत हैं।

अंतरराष्ट्रीय योग दिवस का मुख्य कार्यक्रम देव संस्कृति विश्वविद्यालय व शांतिकुंज के प्रतिनिधियों द्वारा शांतिकुंज में संपन्न किया गया, जिसमें हजारों विद्यार्थी, बच्चे, युवा एवं प्रौढ़ साधकों ने भाग लेते हुए अपनी दक्षता का प्रदर्शन किया।

इस अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्रद्धेय डॉ0 प्रणव पण्ड्या जी ने आठवें अंतरराष्ट्रीय योग दिवस के कार्यक्रम को संबोधित करते हुए कहा कि भारतीय प्राच्य विद्या का कोश अनेकानेक रत्नों से भरा हुआ है, योगदर्शन उनमें से एक है। योग केवल तन और मन को पुष्ट ही नहीं करता, वरन यह मानसिक और आध्यात्मिक प्रगति के द्वार भी खोलता है।

उन्होंने कहा कि योग-साधना विशुद्ध विज्ञान है, जो व्यक्ति को उच्च से उच्चतर, उच्चतम सोपानों की ओर अग्रसर करता है। देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने योग को जीवन की संभावनाओं को साकार करने का विज्ञान बताया।

उन्होंने कहा कि योग का वर्णन गीता, पतंजलि योगसूत्र आदि अनेक ग्रंथों में मिलता है, लेकिन समग्रता पूज्य गुरुदेव के योगदर्शन में मिलती है, जिसमें आसन, प्राणायाम, ध्यान के साथ तप, स्वाध्याय, चिंतन-मनन, ईश्वर प्रणिधान, धारणा, जीवन-साधना आदि योग के प्रत्येक अंग का समावेश है। कार्यक्रम में संगीत विभाग की सुमधुर प्रस्तुतियों ने साधकों की तन्मयता बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

अंतरराष्ट्रीय योग दिवस के उपलक्ष्य में देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा योगासन, निबंध, स्वरचित कविता, श्लोक पाठ, पोस्टर आदि ऑनलाइन प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। इसमें विजयी प्रतिभागियों को पुरस्कृत किया गया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय एवं शांतिकुंज परिवार के योगाचार्यों ने उत्तराखंड सहित कई राज्यों के राजभवन, देश के सामुदायिक भवनों, गायत्री शक्तिपीठों, जोन संगठन कार्यालय, उपजोनों में आठवाँ अंतरराष्ट्रीय योग दिवस बड़े उत्साह के साथ मनाया। जनपद के लक्सर, भगवानपुर, रुड़की, बहादराबाद, नारसन, ज्वालापुर, खानपुर कस्बों सहित औद्योगिक क्षेत्र सिडकुल में कई स्थानों पर अंतरराष्ट्रीय योग दिवस के कार्यक्रमों का संचालन किया गया। सैकड़ों की संख्या में विभिन्न स्थानों पर अनेकों लोगों ने इनमें प्रतिभाग किया।

अमेरिका, कनाडा, दक्षिण अफ्रीका, लाट्विया, लिथुआनिया, इंग्लैंड सहित बीस से अधिक देशों में देव संस्कृति विश्वविद्यालय-शांतिकुंज के नेतृत्व में कार्यक्रम संपन्न हुए। वहीं दूसरी ओर उपलब्धियों की सूची में देव संस्कृति विश्वविद्यालय नित नए प्रतिमान गढ़ते जा रहा है। हाल ही में

विश्वविद्यालय को 'दि नॉलेज रिव्यू मेगजीन' द्वारा अपनी वार्षिक सूची में सन् 2021 के लिए सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करने वाले चुनिंदा शिक्षण संस्थानों में शामिल किया है।

यही कारण है कि देश के प्रतिष्ठित लोगों के आगमन का क्रम बना रहता है। देव संस्कृति विश्वविद्यालय में रामानंद सागर जी द्वारा रचित रामायण में भगवान लक्ष्मण का किरदार अदा करने वाले मशहूर कलाकार श्री सुनील लहरी जी, लेखक व निर्माता श्री शिव सागर चोपड़ा जी का आगमन इस बात को भली भाँति प्रदर्शित करता है। उनका विश्व पर्यावरण दिवस पर शांतिकुंज हरिद्वार में आगमन यह भी दरसाता है कि पर्यावरण को लेकर प्रथम विचार केवल देव संस्कृति विश्वविद्यालय का प्रयास ही है।

इसके साथ ही माननीय श्री चंपत राय जी (श्रीराम जन्मभूमि तीर्थ क्षेत्र न्यास महासचिव) का आगमन भी देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर में हुआ। जहाँ उन्होंने अयोध्या में गायत्री परिवार की गतिविधियों को लेकर चर्चा की।

विश्वविद्यालय परिसर में डॉ० देव राव (वास्तु विशेषज्ञ) जी का भी आगमन हुआ। जहाँ उन्होंने प्रज्ञेश्वर महाकाल के मंदिर में दर्शन किए और बाल्टिक सेंटर का भी अवलोकन किया। जब योग, आयुर्वेद, अध्यात्म, संस्कृति आदि की चर्चा होती है तो भारतवर्ष के बड़े-से-बड़े नागरिक के मुख पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय का नाम होता है।

अपने इस कुशल और अनोखे आचरण के चलते विश्व के अन्य विश्वविद्यालय खुद को यहाँ आने से नहीं रोक पाते। बर्मिंघम विश्वविद्यालय से छात्रों के एक समूह ने यहाँ आकर 14 दिनों तक यहाँ की शैक्षणिक गतिविधियों में प्रतिभाग किया। इसके साथ ही लाट्विया के दोगावपिल्स विश्वविद्यालय से भी विभिन्न क्षेत्रों के निष्णातों यथा प्रशासन, वैकल्पिक चिकित्सा, भाषा व मनोविज्ञान का भी देव संस्कृति विश्वविद्यालय आगमन हुआ, जिन्होंने विश्वविद्यालय की गतिविधियों की न केवन सराहना की, वरन स्वयं की भागीदारी भी सुनिश्चित की।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में प्रत्येक वर्ष की भाँति इस वर्ष भी देश के विभिन्न संस्थानों में विद्यार्थियों का प्लेसमेंट हुआ। सभी प्लेसमेंट संस्थानों-कंपनियों का एक मत है कि मेहनत और ईमानदारी में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों का कोई सानी नहीं।

योग विभाग के विद्यार्थियों का चयन सर्वयोग स्टूडियो—बैंगलोर, अक्षरा स्कूल—नेपाल, अनंत स्वास्थ्य स्टूडियो—अखिल भारतीय योग, सोनालिका इंटरनेशनल ट्रैक्टर लिमिटेड—होशियारपुर पंजाब, फिटेलो इंडिया—मोहाली चंडीगढ़, कल्ट फिट—चेन्नई, हैदराबाद, बैंगलोर, मुंबई, अहमदाबाद में हुआ।

शिक्षाशास्त्र विभाग के विद्यार्थियों का चयन तुलसी किड्स स्कूल—असदा रोड बालोतरा राजस्थान, एस०एम० पब्लिक स्कूल जैसलमेर, गायत्री विद्या मंदिर, राजसमंद राजस्थान, स्मार्ट स्टडी इंटरनेशनल स्कूल—नाथवाड़ा, राजसमंद, राजस्थान, अभ्यास विद्यापीठ बस्ती, उत्तर प्रदेश में हुआ।

कंप्यूटर विभाग में एजी टेक्नोलॉजीज प्राइवेट लिमिटेड—भीलवाड़ा राजस्थान, अनस्कूल, हैदराबाद तेलंगाना, इंटेलिजेन मोहाली और चंडीगढ़, हरिबा इंटर कॉलेज चलाला गुजरात, टेकमेंट टेक्नोलॉजी जैसे संस्थानों द्वारा विद्यार्थियों का चयन किया गया।

पर्यटन विभाग में ट्रैवल वैद्य प्राइवेट लिमिटेड हरिद्वार, अद्भुत उत्तराखंड हरिद्वार, केयर माई ट्रिप-देहरादून, भारत की आसान यात्रा हरिद्वार, एबीडी हॉलिडे प्राइवेट लिमिटेड, हरिद्वार में विद्यार्थी चयनित हुए। पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग के विद्यार्थी इंशोर्ट्स मीडिया नोएडा, न्यूज वाला नेटवर्क रुड़की, इंडिलिक्स हैदराबाद, श्री साँई कृपा नशामुक्त केंद्र रुड़की में हुए।

विद्यार्थियों के समग्र विकास के लिए देव संस्कृति विश्वविद्यालय दुनिया के अनेक विश्वविद्यालयों के साथ मिलकर कार्यशालाओं का आयोजन करता आया है। जिस क्रम में विश्वविद्यालय में एक अंतरराष्ट्रीय कार्यशाला का आयोजन किया गया। यह अंतरराष्ट्रीय कार्यशाला 'इंडिया एंड दि यूरोपियन यूनियन : दि रोल ऑफ रिलीजन एंड कल्चर इन पीस बिल्डिंग' विषय पर आधारित थी।

इस कार्यशाला में अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा, क्षेत्रीय स्थिरता, समृद्धि, आधुनिकीकरण, सतत विकास की प्रगति तथा विश्वभर के लोगों के बीच सांस्कृतिक संबंधों को बढ़ावा देने के विषयों पर चर्चा की गई। साथ ही राष्ट्रों के बीच शांति और सद्भाव सुनिश्चित करने के लिए धर्म और संस्कृति को वाहन के रूप में कैसे स्वीकार किया जा सकता है, इस विषय पर भी चर्चा की गई। इस दौरान कार्यशाला की समग्र रिपोर्ट भी पेश की गई, जिसका सार यह आया

कि ''अपना सुधार ही संसार की सबसे बड़ी सेवा है।'' अर्थात सर्वप्रथम हमें अपने में सुधार करने की आवश्यकता है जिसके फलस्वरूप विश्वशांति जैसी क्रांति को लाया जा सकता है।

इस कार्यशाला का आयोजन देव संस्कृति विश्वविद्यालय, लिस्ट्ट इन्स्टीट्यूट, हंगेरियन कल्चरल सेंटर, नई दिल्ली तथा यूरोपीय संघ द्वारा सह-वित्तपोषित, जीन मोनेट प्रोजेक्ट सफायर, स्कूल ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (जे०एन०यू०), नई दिल्ली के तत्त्वावधान में संपन्न हुआ।

कार्यशाला के प्रथम दिन देश-विदेश से ऑनलाइन व ऑफलाइन दोनों माध्यमों द्वारा विशेषज्ञों ने निर्धारित विषय पर अपने विचार रखे। देव संस्कृति विश्वविद्यालय के कुलपति, प्रतिकुलपति एवं जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली की कुलपति व साथ ही निदेशक, जीन मोनेट प्रोजेक्ट, स्कूल ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज, जे०एन०यू०, चेयरपर्सन सेंटर फॉर यूरोपियन स्टडीज, स्कूल ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज, जे०एन०यू०, भूतपूर्व कुलपति, जे०एन०यू०, डायरेक्टर कल्चरल कौन्सेलर, हंगेरियन सांस्कृतिक केंद्र, नई दिल्ली; स्कूल ऑफ लैंग्वेज, लिट्रेचर एंड कल्चरल स्ट्डीज, जे०एन०यू० के प्राध्यापक भी शामिल रहे। इस कार्यशाला में उपस्थित रहीं जवाहर लाल नेहरू की कुलपति ने इसे बड़ी उपलब्धि बताया। ❑

एक बार लालबहादुर शास्त्री ने बिहार के कुछ लोगों को प्रधानमंत्री निवास पर मिलने का समय दिया। संयोग से उसी दिन एक विदेशी अतिथि के सम्मान में एक कार्यक्रम का आयोजन हो गया और शास्त्री जी को वहाँ जाना पड़ा। बिहार से आए हुए लोग उनका इंतजार करते-करते निराश होकर वापस चले गए। उनके जाने के कुछ देर बाद ही शास्त्री जी लौट आए। आते ही उन्होंने अपने सचिव से पूछा— ''बिहार से कुछ लोग मुझसे मिलने आने वाले थे, क्या वे आ चुके हैं?''

सचिव बोला—''वे आए तो थे, लेकिन आपकी प्रतीक्षा करने के बाद अभी-अभी यहाँ से निकल गए।'' यह सुनकर शास्त्री जी ने सचिव से पूछा—''कुछ मालूम है कि वे लोग कहाँ गए हैं?'' सचिव ने कहा—''वे कह रहे थे कि सामने के स्टॉप से बस पकड़नी है।'' शास्त्री जी तुरंत बस स्टॉप की ओर लपके। यह देखकर सचिव बोला—''श्रीमान! आप यह क्या कर रहे हैं? कोई देखेगा तो क्या कहेगा? यदि बुलाना ही है तो मैं उन्हें बुला लाता हूँ।'' शास्त्री जी बोले—''नहीं! मुझे ही जाना होगा। मुझे उनसे क्षमा माँगनी है और क्षमा माँगने का इससे अच्छा तरीका और क्या होगा कि मैं स्वयं बस स्टॉप से उन्हें बुलाकर लाऊँ।'' इसके बाद शास्त्री जी तेजी से बस स्टॉप पहुँचे। उन्होंने देखा कि वहाँ उनके अतिथि में से एक ने कहा—''दिल्ली में वैसे तो हमने बहुत कुछ देखा, लेकिन सबसे अच्छा यह लगा कि हमारे प्रधानमंत्री में सच्ची मानवता है।''

अपनों से अपनी बात

आत्मजागरण का पर्व

ये माह दीपावली पर्व के उत्सव का माह है। भारतवर्ष के सबसे बड़े और सबसे महत्त्वपूर्ण पर्व के रूप में इसको मान्यता मिली हुई है और अंधकार के ऊपर विजय के रूप में यह प्रकाश पर्व विख्यात रहा है। इस पर्व की सभी को भावभरी मंगलकामनाएँ! यह पर्व इस सौभाग्य के स्मरण का भी पर्व है कि न जाने हमारे जीवन किधर की ओर चल पड़े थे और यदि परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी ने हमारा हाथ पकड़कर हमें सन्मार्ग के पथ पर अग्रसर न किया होता तो न जाने जीवन की दिशा क्या होती?

यही कारण है कि यह मात्र आध्यात्मिक रूप से अंधकार पर प्रकाश की विजय का पर्व नहीं है, बल्कि यह आत्मिक उमंग तथा उल्लास की अभिव्यक्ति का पर्व भी है। दूसरे शब्दों में यह आत्मजागरण का पर्व है। यदि हम जाग न सके, अपने को पहचान न सके, हमारी जिंदगी सोते-सोते ही गुजर गई, बिना जागे ही यह मानव जीवन का अवसर हाथ से निकल गया तो उससे ज्यादा दुःखद क्या हो सकता है? असुरता पर देवत्व की विजय, असत्य पर सत्य की विजय, अधर्म पर धर्म की विजय का यह पर्व मात्र एक धर्म, एक देश का पर्व नहीं है, बल्कि यह समूची मानवता के लिए उत्सव का अवसर है, इस सृष्टि के अस्तित्व का पर्व है।

हम याद करके देखें कि जिन परिस्थितियों में भगवान राम ने दशानन का वध किया था, क्या आज की परिस्थितियाँ वैसी ही परिस्थितियाँ नहीं हैं? यदि हम अपनी आँखें बंद करके उन दिनों का स्मरण करें, जब भगवान राम की अवतार लीला का मुख्य प्रसंग लिखा जा रहा था तब की परिस्थितियाँ क्या वर्तमान समय के समकक्ष नहीं थीं?

भगवान राम के सामने भी उन दिनों दोहरी चुनौती थी। एक ओर लंका का दहन जरूरी था, असुरता का शमन जरूरी था, अंधकार का मानमर्दन जरूरी था तो दूसरी ओर धर्म का संरक्षण भी जरूरी था, रामराज्य की स्थापना भी जरूरी थी। वो परिस्थितियाँ भी आज की तरह की परिस्थितियाँ थीं। तब दुष्प्रवृत्तियों का उन्मूलन भी जरूरी था और सत्प्रवृत्तियों का संवर्द्धन भी जरूरी था। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास जी रामचरितमानस में लिखते हैं कि

जब जब होइ धरम कै हानी।
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी।
सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

कहने का अर्थ स्पष्ट है कि ऐसी परिस्थितियों में अपने वचन की मर्यादा को पूर्ण करने के उद्देश्य से भगवान ने अवतरण के कार्य को संपन्न किया। उस लीला काल में जब भगवान को रावण के विरुद्ध सहायता की आवश्यकता हुई तो उनके सहयोगी के रूप में कौन आया? कोई राजा-महाराजा भगवान के सहयोग के लिए नहीं आया, बल्कि रीछ-वानरों से लेकर गिद्ध-गिलहरी ने अपनी भावनाओं को भगवान के लिए निछावर कर दिया।

सारांश में ऐसा कहा जा सकता है कि देवमानव वो होते हैं, जिनके पास आत्मबल होता है। बाहर से रीछ-वानरों के पास वो बल नहीं था, जो दशानन रावण की आसुरी सेना में था। न गिलहरी में ताकत थी, न जटायु में थी, न शबरी में थी—ये सभी साधनों की दृष्टि से हीन थे, ताकत की दृष्टि से क्षीण थे, पर इनके इरादों में दम था और संकल्प में प्राण था। इतिहास गवाह है कि जिनके संकल्पों में प्राण होता है, जिनके इरादों में दम होता है, उनके उछाले पत्थर भी पानी पर तैर ही जाते हैं।

यह शाश्वत सत्य है कि धर्म को विजयी होने से कोई रोक नहीं सकता। समय को बदलने से कोई रोक नहीं सकता। अनाचार को अंत की प्राप्ति करने से कोई रोक नहीं सकता। जो भगवान की योजना है, उसे पूरा होने से कोई रोक नहीं सकता। मरना रावण को भी पड़ता है, दुर्योधन को भी पड़ता है, कंस को भी पड़ता है, पर इसके लिए भगवान

माध्यम देवात्माओं को बनाते हैं और यह समय ऐसे ही देवात्माओं के जागरण का समय है, यह पर्व आत्मबलसंपन्न देवात्माओं के जागरण का पर्व है।

वर्षों पहले परमपूज्य गुरुदेव ने लिखा भी था कि हमारे सामने रामायण की तरह की परिस्थितियाँ हैं और ये इसलिए आई हैं, ताकि हम अपने भीतर छिपे देवमानव को पहचान सकें, उसको जगा सकें। गोवर्धन तो भगवान की छोटी-सी उँगली ही उठा देती है, पर उसे उठाने के लिए लाठियाँ ग्वाल-बालों को लगानी पड़ती हैं।

ये समय यही देखने के लिए आया है कि वक्त पड़ने पर हम भगवान के सच्चे सहयोगी सिद्ध हो पाते हैं या नहीं हो पाते हैं; क्योंकि जो योजना भगवान की है वो तो पूरी हो करके ही रहती है, पर भगवान तब भी लीला रचाते हैं, क्यों रचाते हैं ? ताकि जो साहस और पराक्रम की दुहाइयाँ दिया करते थे, साथ और विश्वास की बातें किया करते थे, उनकी परीक्षा हो सके। यह दीपावली का पर्व उस वचन को स्मरण करने का पर्व है, जो हमने जन्म लेने के समय परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी को दिया था।

पूज्य गुरुदेव ने सन् 1986 की अखण्ड ज्योति में लिखा भी है कि 'इस वचन से पीछे हटने पर मात्र अपयश कमाया जा सकता है, अच्छा हो कि ऐसा अवसर जीवन में न आए।' पूज्य गुरुदेव लिखते हैं कि 'अच्छा हो कि ये देखने के लिए हमारे आँख व कान सक्रिय न रहें कि जिनके ऊपर उत्कृष्टता का दायित्व सौंपा गया था—वो परीक्षा की घड़ी आने पर खोटे सिक्के की तरह काले पड़ गए और कूड़े के ढेर में छिप गए।'

वर्तमान की विषमता की जो परिस्थितियाँ हैं, वो आई ही इसलिए हैं कि हम साधारणता के चोले को त्यागकर महानता को जन्म दें। ये परिस्थितियाँ आई इसलिए हैं कि कठिन समय में व्यक्ति सही-गलत का, शुभ-अशुभ का निर्धारण कर सके। ये आई इसलिए हैं, ताकि संघर्षों के थपेड़ों के बीच में हमारे इरादों की मजबूती को नापा जा सके।

यह समय आत्मजागरण का समय है और अपने आपको जगाने का पर्व है। दीपावली का पर्व आत्मजागरण का पर्व है और हमें इस समय अपने जीवन के उद्देश्य का स्मरण करके नए उत्साह के साथ खड़े हो जाने की तैयारी कर लेनी चाहिए।

❑

महर्षि मुद्गल परम विरक्त और घोर तपस्वी थे। वे धर्मशास्त्रों के स्वाध्याय और भगवद्भजन में लगे रहते थे। वे खेतों में गिरे हुए अन्न को एकत्र कर उससे अपना पेट भरते थे। एक बार व्रत करके जब वे अगले दिन व्रत का पारण करने वाले थे कि अचानक एक दीन-हीन व्यक्ति उनके पास पहुँचा और उनसे भोजन देने की याचना की। महर्षि ने अपने लिए बनाई गई रोटियाँ याचक को दे दीं। यह क्रम कई बार दोहराया गया। हर बार उन्होंने स्वयं भूखा रहकर याचक को अपनी रोटियाँ दे दीं। अचानक उनके समक्ष देवदूत प्रकट होकर बोला—"आपके पुण्यों के कारण मैं आपको स्वर्गलोक ले जाने आया हूँ।" महर्षि ने देवदूत से पूछा—"धरती व स्वर्ग में क्या अंतर है ?" देवदूत ने कहा—"स्वर्गलोक भोगभूमि है; जबकि पृथ्वी कर्मक्षेत्र है।" यह सुनकर महर्षि मुद्गल बोले—"मुझे स्वर्ग नहीं जाना। मैं पृथ्वी पर रहकर साधना द्वारा मुक्ति प्राप्त करूँगा।" देवदूत महर्षि को देखता रह गया।

द्रवित प्रार्थना गुरुवर से

लोक-मंगल के दीपक में, झरो माँ! आत्मस्नेह की धार।
आँधियाँ बहुत चल रहीं माँ! शक्ति दो, करने को प्रतिकार॥

सुरक्षा देगी हे गुरुदेव! आपके हाथों की ही ओट।
प्राण की बाती फिर तो सहज, झेल लेगी आँधी की चोट॥
तमस के मनसूबे भी फिर, स्वयं हो जाएँगे बेकार।
आँधियाँ बहुत चल रहीं माँ! शक्ति दो, करने को प्रतिकार॥

आँधियाँ काम-क्रोध की उठीं, बुझाने को संयम का दीप।
हवाएँ लोभ-मोह की मँडराती रहतीं, उसके नजदीक॥
ज्योति को धूमिल करने खड़े, सदा ही मद-मत्सर तैयार।
आँधियाँ बहुत चल रहीं माँ! शक्ति दो, करने को प्रतिकार॥

महत्त्वाकांक्षाएँ बे-रोक पास आकर देती हैं फूँक।
विवेक-बाती की कालिख बनी, कामना की काली करतूत॥
तुले हैं ये सब ही तो माँ! ज्ञानचर्चा करने निस्सार।
आँधियाँ बहुत चल रहीं माँ! शक्ति दो, करने को प्रतिकार॥

आत्म की ज्योति जगा दो माँ! रहे आलोकित प्राण-प्रदीप।
शील-संयम, सेवा-स्वाध्याय, प्रज्वलित रखें साधना-दीप॥
बन सकें 'दीपयज्ञ' के दीप, कर सकें आलोकित संसार।
लोक-मंगल के दीपक में, झरो माँ! आत्मस्नेह की धार॥

—मंगल विजय 'विजयवर्गीय'
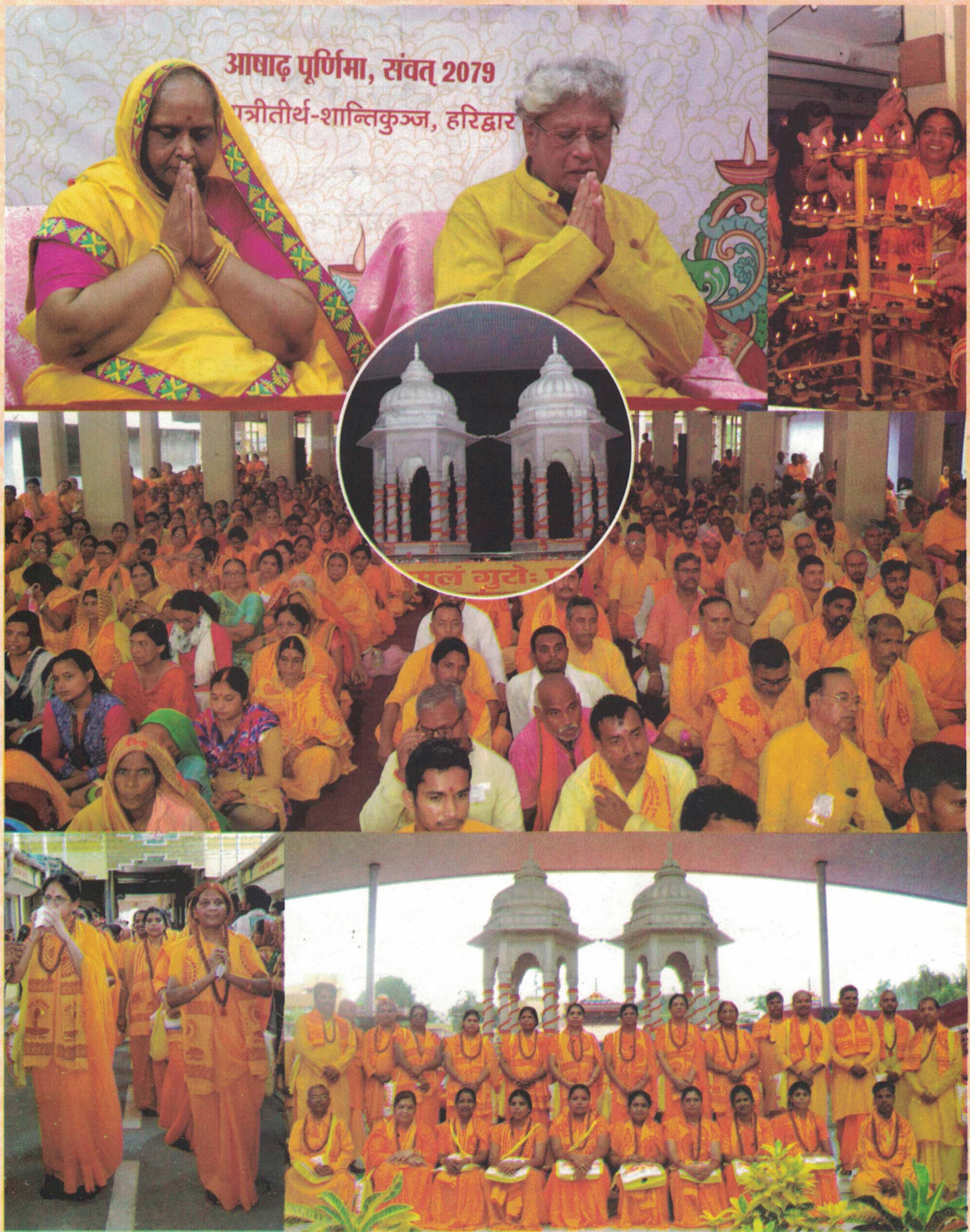
युगतीर्थ में गुरुपूर्णिमा के पावन पर्व पर परिजनों द्वारा गुरुसत्ता के प्रति श्रद्धाभिव्यक्ति एवं ब्रह्मवादिनी बहनों की प्रचार टोली की विधिवत् विदाई

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

प्र. ति. 01-9-2022
Regd. N0. Mathura-025/2021-2023
Licensed to Post without Prepayment
N0. : Agra/WPP-08/2021-2023

श्रावण मास के पावन अवसर पर युगतीर्थ से जनजागरण कांवड़ यात्रा का प्रस्थान एवं हरिद्वार में सकारात्मक संदेशों का प्रचार-प्रसार

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक – मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा
से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा–281003 से प्रकाशित। संपादक – डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूर भाष–0565-2403940, 2402574 2412272, 2412273 मो बा.–09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल– akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org